स्वामी राम तीर्थ की श्रेष्ठ कहानियाँ

जगन्नाथ प्रभाकर





आर्य प्रकाशन मण्डल दिल्ली-31

दो शब्द

बेटी स्नेह-शोभा शारदा संस्कृत—एम० ए० पास कर चुकी। अभी विवाह-बंधन में बंधी नहीं थी। समय की उदारता से उसके मन में अंग्रेजी भाषा में अपनी योग्यता को समृद्ध करने का उत्साह पैदा हुआ। उसने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, आचार-नीति, महापुरुष जीवन-चरित्र आदि विषयों से सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन आरंभ कर दिया। इस अत्यन्त जीवन-उपयोगी कार्य में उसकी हार्दिक लगन के प्रति मेरे स्नेह-पूरित निदेशात्मक सहयोग-भाव का आकर्षित हो जाना स्वाभाविक ही था।

मैं बेटी के लिए उपयुक्त पुस्तकों का चयन करता और वे पुस्तकें जुटा देता। स्वाध्याय के लिए प्रतिदिन कम से कम एक घंटे का समय निश्चित कर दिया गया। अध्ययन के समय, मैं पास बैठ जाता और अध्ययनाधीन पुस्तक के जिस स्थल या विषय के समझने में उसे कठिनाई अनुभव होती, मैं उसे सुलझा-समझा देने का प्रयत्न करता। यह स्वाध्याय लम्बे समय तक धारा-प्रवाह चलता रहा। तब ऐसा मालूम होता था कि इस प्रवाह से उद्वेल्लित होकर नाना ज्ञान-लहरियाँ मन और बुद्धि को निखारती सँवारती आलोकित करती, हृदय के कोने-कोने को अपूर्व आध्यात्मिक आनन्द-रस से प्लावित करती, नस-नस में नयी प्रेरणाओं, नये उत्साह, निराशा-विमुक्त, विकास-उन्मुख जीवन की विद्युत भरती चली जा रही हैं।

उदाहरण या दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत की गयी स्वामी राम तीर्थ की जो कहानियाँ उसे बहुत ही अच्छी, रोचक और शिक्षाप्रद लगीं और मैं भी जिनसे बहुत प्रभावित हुआ उनका हिन्दी-रूपान्तर करके पुस्तक

के रूप में प्रस्तुत करने का विचार उत्पन्न हुआ। यह विचार बहुत समय तक मन के एक कोने में निस्तब्ध, निश्चेष्ट पड़ा रहा, फिर कुछ स्फूर्त अनुकूल परिस्थितियों ने इसे जो छेड़ा, तो इसे कार्यान्वित करने के लिए मेरे संकल्प को बल मिल गया। मैंने अपनी पसन्द और साधारण पाठक-वर्ग की रुचि को सामने रखकर उन कहानियों में से कुछ कहानियों का चयन किया और उनका अनुवाद कर डाला। परन्तु शब्दानुवाद का प्रयास नहीं किया, कुछ स्वतन्त्रता अवश्य अपना ली, किन्तु कहानी के मौलिक रूप एवं उद्देश्य को आँच नहीं आने दी। केवल भाषा को गतिशील एवं बामुहावरा बनाने की कोशिश की गयी है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक कहानी के अन्त में कुछ शब्दों द्वारा कहानी में निहित शिक्षा-तत्त्व का संकेत कर दिया गया है। यदि ऐसा न किया जाता, तो इन कहानियों एवं स्वामी जी के उद्देश्य से न्याय नहीं हो सकता था। स्वामी जी ने प्रत्येक कहानी का उद्भावन केवल इसीलिए किया था कि इसके रोचक माध्यम से अपने श्रोताओं एवं पाठकों के निकट विषय की गंभीरता तथा दुरूहता बोधगम्य व सरल हो जाय और साथ ही साथ, शिक्षा के तत्त्व भी उजागर हो उठें।

खैर इन चुनीदा कहानियों का यह अनुदित-संग्रह पुस्तक के रूप में आपके हाथों में है। मुझे विश्वास है कि जो भी महानुभाव इसे एक बार पढ़ना आरंभ करेगा, इसे पूरा पढ़े बिना दम नहीं लेगा और यह महसूस करेगा कि इसकी प्रत्येक कहानी जहां अत्यन्त रुचि-मोहक है, वहां उसका दामन उज्ज्वल प्रेरणाओं और सुनहले शिक्षा-तत्त्वों से जगमगा रहा है तथा हृदय व मन को आलोकित किये देता है। पाठक वृन्द, चाहे वे छात्र-छात्राएँ हैं, या पढ़-लिख कर अपने विभिन्न व्यवसायों में लगे हैं, चाहेंगे कि वे इस पुस्तक को बार-बार पढ़ें और अपने प्रियजनों से इसे पढ़ने का अनुरोध करें।

—जगन्नाथ प्रभाकर

जब पाजी क़ाज़ी बन गया

एक बार एक काजी साहिब किसी बादशाह के पास इस्लामी विधान के अनुसार गये। बादशाह ने क़ाजी साहिब का बहुत सम्मान किया, क्योंकि ऐसा करना बादशाह के लिए इस्लाम की परम्परा एवं नियम के अनुसार आवश्यक था। परन्तु बादशाह उन क़ाजी साहिब की योग्यता को परखना चाहते थे। बादशाह स्वयं कोई विद्वान न थे। वे जो प्रश्न क़ाजी साहिब से पूछना चाहते थे, उनके अपने सोचे हुए नहीं थे, प्रत्युत किसी अन्य व्यक्ति के सुझाये हुए थे, जो स्वयं गवर्नर पद चाहते थे—अर्थात् क़ाजी बननां चाहते थे।

उपर्युक्त क़ाजी बादशाह के सामने आये, तो बादशाह ने ये प्रश्न प्रस्तुत कर दिये, "खुदा कहाँ बैठते हैं?", "खुदा किस दिशा की ओर मुँह करके बैठते हैं?" "वे क्या करते हैं?" बादशाह ने क़ाजी से कहा कि यदि उन्होंने उक्त प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर बादशाह को दे दिये, तो उनकी उन्नति कर दी जायगी।

क़ाजी ने सोचा कि बादशाह द्वारा पूछे गये प्रश्न बहुत कठिन हैं। उन्होंने उत्तर देने के स्थान पर, बादशाह की खूब प्रशंसा की और चिरौरी की ऐसी हवा बाँधी कि बादशाह के चेहरे पर कोमलता एवं प्रसन्नता झलकने लगी। तब क़ाजी साहिब ने प्रश्नों के उत्तर देने के लिए आठ दिन की अवधि माँगी। बादशाह मान गये।

अब क़ाजी साहिब प्रश्नों के उत्तर सोचने में लग गये। आठ दिन तक निरन्तर सोच-सोचकर हलकान हो गये, परन्तु परिणाम कुछ न निकला।

वे बादशाह को प्रश्नों के क्या उत्तर दें, जिनसे उनकी सन्तुष्टि हो सके? अन्त में आठवां दिन भी आ गया, परन्तु प्रश्नों के उत्तर कहाँ थे ! क़ाज़ी माथा पीटकर रह गये। कोई संतोषजनक उत्तर सूझता ही न था। तब उत्तर देने की अवधि बढ़वाने के लिए क़ाज़ी साहिब ने बीमारी का बहाना बनाया और उन्हें और समय मिल गया।

क़ाज़ी साहिब पर निराशा और चिन्ता के पहाड़ टूट पड़े थे। चेहरे पर हवाइयाँ छूट रही थी। यह देखकर क़ाज़ी साहिब का नौकर 'पाजी' उनके पास आया और उनसे चिन्ता का कारण पूछा। क़ाज़ी साहिब, चिन्ता की आग में जले-भुने बैठे थे, झल्लाकर बोले, "दूर हो जाओ आँखों से; मुझे तंग मत करो। मैं मौत के किनारे पर खड़ा हूँ।"

नौकर ने बड़े धीर भाव से पूछा, "हुजूर ! आखिर पता तो चले कि बात क्या है? फिर आप क्यों मरें, मैं जो मरने के लिए बैठा हूँ। इससे पहले कि आपको कष्ट हो, मैं जान पर क्यों न खेल जाऊँ।"

पाजी का अनुरोध देखकर क़ाज़ी साहिब ने सारी बात समझा दी। यह नौकर—पाजी—बहुत नीचे दर्जे का आदमी था, जो सम्मान के योग्य नहीं समझा जाता था। परन्तु वास्तव में वह क़ाज़ी का शिष्य था और एक विद्वान था। वह बादशाह के प्रश्नों के उत्तर जानता था और उसने कहा कि वह उत्तर देने के लिए बादशाह के सामने हाजिर हो जायगा। क़ाज़ी साहिब केवल इतना-सा काम करें कि कागज के एक टुकड़े पर उसे जाने का आदेश लिख दें और यदि उसके उत्तर बादशाह के निकट संतोषजनक न होंगे, तो वह मरेगा, उसके मालिक (क़ाज़ी) नहीं मरेंगे।

क़ाज़ी साहिब ने नौकर को भेजने या कुछ लिख देने में टालमटोल की। इतने में बादशाह का एक संदेश-वाहक क़ाज़ी साहिब के पास आया और क़ाज़ी साहिब के होश उड़ गये। शरीर कंपकंपाने लगा। इसलिए उन्होंने तुरन्त नौकर को शाहशाह के पास जाने की अनुमति दे दी। पाजी ने अपने सबसे अच्छे वस्त्र पहन लिये, हालाँकि वे चीथड़े से ही जान

पड़ते थे। परन्तु उसे इस बात की परवाह न थी। वह एक सूफी-मिज़ाज (वेदान्तिक-प्रकृति) इन्सान था। झूठी शान का हामी नहीं था।

भारत में हमेशा राजा या बादशाह ही महात्माओं के पास जाते हैं और उनसे बुद्धि एवं विवेक की बहुत-सी बातें सीखते हैं। परन्तु यह नौकर 'पाजी' बिल्कुल निर्भय होकर स्वयं बादशाह के सामने उपस्थित हुआ और बोला, "हुजूर! आप क्या चाहते हैं? आप क्या पूछने की इच्छा करते हैं?"

बादशाह ने कहा, "क्या तुम उन प्रश्नों के उत्तर दे सकोगे, जो तुम्हारे मालिक से पूछे गये हैं?"

"जरूर उत्तर दूंगा," पाजी ने उत्तर दिया, "परन्तु आप जानते हैं कि जो व्यक्ति जिज्ञासा का उत्तर देता है, वह गुरु कहलाता है और जो प्रश्न पूछता है, वह जिज्ञासु अर्थात् शिष्य (शागिर्द) होता है। हम आपके सच्चा मुसलमान होने की आशा करते हैं तथा आपको पवित्र पुस्तकों (शरीअत की किताबों) में बताये गये विधान को मानने वाले समझते हैं। शरीअत के अनुसार मुझे समादर का स्थान अथवा आसन मिलना चाहिये और आपको मुझसे निम्न स्थान पर बैठना चाहिये।"

अस्तु बादशाह ने 'पाजी' को पहनने के लिए बहुमूल्य वस्त्र दिये और बैठने को अपना राज-सिंहासन दिया तथा स्वयं बादशाह सिंहासन से नीचे की सोपान पर बैठ गये। परन्तु बादशाह ने कहा, "यहाँ एक और बात बता देना बाक़ी है कि यदि आपके उत्तर मेरे निकट संतोषजनक न हुए, तो मैं आपको तलवार के घाट उतार दूंगा।"

पाजी ने कहा, "ठीक है, हुजूर, यह बात तो पहले ही से समझी-बूझी है।"

अब पहला प्रश्न, जो पूछा गया था, "ख़ुदा कहाँ बैठता है?" इस प्रश्न का उत्तर यदि केवल मात्र शब्दों ही में दिया जाता, तो बादशाह की तसल्ली नहीं हो सकती थी। इसलिए 'पाजी' ने कहा, "एक गाय लाइये।"

गाय लायी गयी, तो पाजी ने बादशाह से पूछा, "क्या गाय के पास कोई दूध है ?"

बादशाह ने कहा, "जी हाँ। यह तो आम बात है कि गाय दूध देती है।"

"तो वह दूध कहाँ बैठता है ?"

"थनों में," बादशाह ने उत्तर दिया।

"यह कहना ग़लत है," पाजी ने कहा, "दूध तो गाय के पूरे शरीर में —रोम-रोम में बसा हुआ है। अब गाय को भिजवा दीजिये।"

इसके पश्चात् कुछ दूध मँगवाया गया। पाजी ने पूछा, "मक्खन कहाँ है ?" उपस्थित लोगों ने उत्तर दिया, "यहाँ है।"

"परन्तु कहाँ है ?" पाजी ने पूछा। "मुझे बता दीजिये।"

इस बात का उत्तर वहाँ किसी से बन न आया। तब पाजी बोला, "यदि आप यह मुझे बता नहीं सकते कि मक्खन कहाँ बैठता है, फिर भी आपको विश्वास करना पड़ता है कि मक्खन वहाँ है। वास्तव में मक्खन सब जगह है। उसी प्रकार ख़ुदा सब जगह है, सारे विश्व में व्यापक है। जैसे कि मक्खन दूध में सब जगह व्याप्त है, और दूध सब जगह गाय में मौजूद है। दूध को हासिल करने के लिए आपको गाय दोहनी पड़ेगी. इसी प्रकार ख़ुदा को पाने के लिए अपना हृदय दोहना होगा।"

पाजी ने कहा, "ऐ बादशाह! क्या आपको संतोषजनक उत्तर मिल गया ?"

"जी हाँ, आपका कहना ठीक है।" बादशाह ने कहा।

अब वे सब लोग, जो कहते थे कि ख़ुदा सातवें या आठवें आसमान पर रहते हैं, बादशाह की नजरों से गिर गये। बादशाह के निकट उनका कोई महत्त्व नहीं रह गया था। उन लोगों की धारणा ठीक नहीं थी।

इसके पश्चात् दूसरे प्रश्न का नम्बर आया। "ख़ुदा किस दिशा की तरफ देखता है—पूर्व की ओर या पश्चिम की ओर, उत्तर की ओर या दक्षिण की ओर ?"

यह प्रश्न भी बड़ा विचित्र प्रश्न था, परन्तु यह लोग ख़ुदा को एक व्यक्तित्व के रूप में देखते थे।

पाजी ने कहा, "बहुत अच्छा, एक रोशनी लाओ।"

एक मोमबत्ती लायी गयी और जलायी गयी। पाजी ने उन्हें दिखाया कि मोमबत्ती का मुंह किसी एक दिशा की ओर नहीं, उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम की ओर नहीं, परन्तु सब दिशाओं में समान रूप से किरणें फैला रही है। इसी प्रकार ख़ुदा आपके हृदय मे एक मोमबत्ती के समान है, जो समस्त दिशाओं की ओर देख रहा है।

अब एक और प्रश्न पूछा गया, ,'ख़ुदा क्या करता है ?"

पाजी ने कहा, "बहुत ठीक," और बादशाह से कहा कि क़ाज़ी साहिब को लाया जाय। जब पाजी का मालिक—क़ाज़ी साहिब—आये तो उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उनका नौकर बादशाह के तख़्त या सिंहासन पर बैठा हुआ है। तब पाजी ने क़ाज़ी से उस स्थान पर बैठने को कहा, जहाँ पाजी को बैठना था और बादशाह से उस स्थान पर बैठने को कहा गया, जहाँ क़ाज़ी साहिब को बैठना था और वह स्वयं बादशाह के सिंहासन पर बैठा रहा और बोला, "यह है तरीक़ा—ख़ुदा समस्त चीज़ों को गतिशील रखते हैं, परिवर्तनशील रखते हैं। वे 'पाजी' को बादशाह में, बादशाह को क़ाज़ी में और क़ाज़ी को पाजी में परिवर्तित कर देते हैं। उदाहरण आपके सामने है।

"यही कुछ संसार में किया जा रहा है। एक परिवार उन्नति के शिखर पर चढ़ रहा है, इसके पश्चात् वह अवनत होकर ऐसी स्थिति में चला जाता है कि कोई जानता तक नहीं और उसके स्थान पर अन्य परिवार आ जाता है।

"कुछ समय के लिए एक आदमी बहुत ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, इसके बाद कोई दूसरा आकर उसके स्थान पर बैठ जाता है। बस यही चक्र चलता रहता है, दिन-प्रतिदिन और वर्ष-प्रतिवर्ष। और इसी प्रकार सारे संसार में सदा परिवर्तन की लहर चलती रहती है। ख़ुदा यही कुछ

करता है।"

पाजी के उत्तरों से बादशाह संतुष्ट हो गये और पाजी को क़ाज़ी—गवर्नर बना दिया गया।

० भगवान सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा हैं, सभी ओर उनकी नजर है और संसार की निरन्तर उन्नति एवं अवनति का चक्र चलाये रखते हैं। संस्कृत साहित्य में इसे ही ब्रह्मचक्र कहा गया है। इसी बात को समझाने के लिए भगवान् के हजारों सिर, असंख्य आँखों व हाथों, पाँवों आदि से युक्त विराट् रूप की कल्पना की गयी है। और इसी ब्रह्मचक्र भाव को समझाने के लिए शाइर[1] इक़बाल ने भी खूब कहा है—

सकूं मुहाल है क़ुद्रत के कारख़ाने में।
सबात एक तग़ैयुर को है ज़माने में।।

अर्थात्, प्रकृति के इस कारख़ाने अर्थात् विश्व ब्रह्माण्ड में आराम या स्थिर-शीलता असंभव है। यहाँ तो केवल परिवर्तन ही को स्थिरता—अमरत्व—प्राप्त है।

1. शुद्ध उच्चारण 'शा-इर' है 'शा-यर' नहीं।

अद्भुत जीवन

किसी देश में एक बहुत ही मेधावी, विद्वान् ऐश्वर्यवान एवं सौम्य प्रकृति राजा रहते थे। वे राजसिंहासन पर बैठे। वर्षों पर वर्ष बीत गये, परन्तु उन्होंने विवाह न कराया। प्रजा को बड़ा चाव था कि महलों में एक रानी आये और समय पाकर एक नन्हे-मुन्ने उत्तराधिकारी की किलकारियों से राज-अन्तःपुर मुखरित हो उठे। प्रजा के बड़े-बड़े लोगों ने राजा से निरन्तर निवेदन जारी रखा कि वे अपने लिए भार्या को पसन्द करें। राजा ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया, इस शर्त पर कि प्रजा उन्हें स्वयं अपनी पसन्द की सुकुमारी से विवाह करने की अनुमति दे दे।

यह बात उल्लेखनीय है कि उस देश में विवाह और प्रेम-प्रणय के विषय में भी किसी व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। राजा भी इस रीति व परम्परा में बँधे हुए थे। लोगों ने सोचा कि राजा अपनी इच्छा के अनुसार विवाह करना चाहते हैं और यदि उनकी इच्छा पर फूल न चढ़ाये गये, तो वे आयु भर कुंवारे ही रहेंगे, इसलिए उचित यही है कि राजा को अपनी पसन्द के अनुसार ही विवाह करने की अनुमति दे दी जाय। अन्त में प्रजा ने उन्हें अनुमति दे दी।

राजा ने अपने मन्त्री-सामन्तों को विवाह-उत्सव की तैयारियाँ करने का आदेश दे दिया। हर चीज अत्यन्त राजसी और भव्य रीति से तैयार की गयी। निश्चित दिन के लिए बड़ी आन-बान से सेना सज-धज गयी। प्रत्येक व्यक्ति सुन्दर एवं मूल्यवान वस्त्र पहनकर सर्वोत्तम गाड़ियों और रथों में बैठ गये। आधी सेना एक पहलू की ओर और आधी दूसरे पहलू

की ओर तथा मध्य में राजा की सवारी थी। यह सारा जुलूस राजा के आदेश के अनुसार चल पड़ा। कोई विशेष मार्ग ग्रहण न किया गया। चलते-चलते वे बड़े घने वनों में बहुत दूर तक चले गये।

यह देखकर राजा के संगी-साथी आपस में काना-फुसकियाँ करने लगे, "यह क्या करने जा रहे हैं राजा? क्या वे झील से या झाड़-झंखाड़ और पत्थरों के साथ विवाह रचाने चले हैं?" वे बहुत आश्चर्यान्वित थे—और चुपचाप चले जा रहे थे। अन्त में यह शोभा-यात्रा जंगल के एक ऐसे स्थान पर पहुँच गयी, जहाँ छोटी-सी कुटिया अवस्थित थी और कुटिया के निकट ही एक झील थी, जिसका बहुत ही निर्मल स्वच्छ जल दिन के आलोक में झिलमिला रहा था। झील के किनारों पर अत्यन्त रमणीक, सुन्दर, शोभावन्त प्राकृतिक कुंज अलौकिक दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। कुंज के एक वृक्ष की शाखा के साथ एक खटोला या झूला सा लटक रहा था, जिसमें एक बूढ़ा व्यक्ति लेटा हुआ था। राजा के साथी आश्चर्य-चकित मन में कहने लगे, "क्या महाराज इस बूढ़े से विवाह रचायेंगे?"

आधी सेना आगे बढ़ गयी और जब राजा का हाथी उस स्थान पर पहुँचा तो उन्होंने अपनी सेना और साथियों को रुक जाने का आदेश दिया। तुरन्त ही वहाँ एक बहुत सुन्दर सुकुमारी कन्या दिखायी दी, जो अपने पिता—उस बूढ़े व्यक्ति—का झूला धीरे-धीरे झुला रही थी।

राजा राजसिंहासन पर बैठने से पहले, इस स्थान पर कई बार आ चुके थे। वे इस सुकुमारी को अच्छी तरह से देखते रहे थे और इसे सदा कर्तव्य-पालन में सजग और तत्पर पाया करते थे। वह अपने पिता की देख-भाल बड़े मनोयोग से तथा श्रद्धापूर्वक करती थी। पानी लाती, अपने पिता को नहलाती और भोजन खिलाती। कुटिया की सफ़ाई, धोने, माँजने, मसने-दलने आदि सब प्रकार के काम किया करती। परन्तु इन सब कामों के करते समय सदा प्रसन्न-वदन, प्रफुल्ल-चित्त, पुलकित-नयन, और चिड़ियों की भाँति चहकती दिखाई देती। सुकुमारी के इस दैवी

स्वभाव से राजा बहुत ही प्रभावित हो चुके थे और उन्होंने मन में संकल्प कर रखा था कि यदि उन्होंने विवाह करना ही है, तो इसी लड़की से करना है।

इस सुकुमारी ने विस्मित-विस्फारित नयनों से इस सारे सजे-धजे भव्य समारोह को देखा और इस ओर अधिक ध्यान न दिया कि वह व्यक्ति, जो राजा होने से पहले कई बार घोड़े पर सवार होकर इनके द्वार के आगे से गुज़रा करता था, यही राजा था। लड़की ने अपने पिता से इस राजसी समारोह के विषय में पूछा। उसके पिता ने बताया कि यह एक दुलहा है, जो किसी दूर देश में राजकुमारी को ब्याहने जा रहा है।

इतने में राजा अपने हाथी से नीचे उतरे और उक्त बूढ़े व्यक्ति के पास जाकर उसके पाँव मे प्राच्य रीति के अनुसार दण्डवत् प्रणाम किया। बूढ़े व्यक्ति ने उनसे कहा, "मेरे बेटे, क्या चाहते हो?"

राजा का चेहरा खुशी से चमक उठा। वे बोले, "मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपना धर्म-पुत्र (दामाद) बना लें।

बूढ़े व्यक्ति का हृदय हर्ष से उछल पड़ा। उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने कहा, "तुम्हें भ्रम हुआ है, राजा, तुम्हें भ्रम हुआ है। तुम्हें एक भिखारी की बेटी से ब्याह रचाने की इच्छा कैसे हो सकती है? हम ग़रीब हैं, बहुत ही ग़रीब!"

राजा ने कहा कि वे इस भोली-भाली रूपवती लड़की से अधिक अन्य किसी से प्यार नहीं करते। बूढ़े ने ज़रा सोच कर उत्तर दिया, "यदि ऐसी बात है, तो यह कन्या तुम्हें सौंपता हूँ।"

इस कन्या का यह पिता वेदान्त-वेत्ता था और उसने अपनी बेटी को भी वेदान्त की शिक्षा से अलंकृत कर रखा था। अब बूढ़े महात्मा ने राजा से कहा, कि उसके पास दहेज देने को कुछ नहीं है और जो कुछ वह दे सकता है, वह है केवल आशीर्वाद।

राजा ने साधु-कन्या अथवा अपनी दुलहन को सब प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र भेंट किये और उससे पहन लेने के लिए निवेदन किया। साधु-कन्या

ने वे वस्त्र पहन लिए, परन्तु साधु-कन्या खाली हाथ राजा के पास न गयी। उसके पास दहेज था। वह क्या था? एक टोकरी में, जो राजा ने उसे आभूषण रखने के लिए दी थी उसने अपने फटे-पुराने वस्त्र डाल रखे थे, जो उसने पहले पहन रखे थे।

अब वेदान्ती साधु अकेला रह गया। एक सेवक उसकी सेवा के लिए वहाँ छोड़ दिया गया। इससे अधिक बूढ़ा साधु राजा से और कुछ चाहता भी नहीं था।

राजा अपनी दुलहन को लेकर राजमहलों में आ गया। पहले-पहले राजा के दरबारियों ने इस दुलहन को इसलिए पसन्द न किया कि वह समाज के निम्न वर्ग की सन्तान थी। मंत्री, सामंत और ऐश्वर्य-मदमाते लोग चाहते थे कि राजा का विवाह किसी विख्यात राजकुमारी से होता। वे इस दुलहन के प्रति ईर्ष्या की भावना रखते थे और आदर करना नहीं चाहते थे। परन्तु उस रानी ने अपने मधुर स्वभाव, सुसभ्य-शालीन आचरण तथा उदार विचारों द्वारा उन सबके मनों को मोह लिया। धीरे-धीरे वे सभी लोग रानी के भक्त होते चले गये। वह सदा शान्त और प्रसन्न रहती थी। किसी बात का बुरा नहीं मानती थी और न किसी परिस्थिति पर खिन्न होती थी।

एक डेढ़ वर्ष के बाद रानी की गोद हरी हो गयी। एक अत्यंत सुन्दर लड़की ने जन्म लिया। राजा और रानी खुशी से फूले नहीं समाते थे। जब यह राजकन्या तीन या चार वर्ष की हुई, तो राजा रानी के पास आये और उसे बताया कि राज्य में विद्रोह की एक हवा चलने लगी है और विनाश की ज्वाला भड़क उठने की आशंका सुलग रही है। रानी ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने का कारण पूछा। उसके पति ने बताया कि मन्त्री, सामन्त तथा अन्य अधिकारी वर्ग उसी समय से उससे खार खाये बैठे थे, जब से वे उसे ब्याह कर लाये थे। अब उन लोगों को यह बात सहन नहीं होती कि राजकुमारी राज्य के उत्तराधिकारी का स्थान ग्रहण करे, क्योंकि वह समाज के निम्न-वर्ग की माता की कोख से जन्मी है। वे

कुलीन रक्त चाहते हैं और इस बात के इच्छुक हैं कि राजा किसी प्रधान-मंत्री के बेटे को गोद ले लें और उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करें।

राजा ने अपने सामन्तों को बताया कि यदि वे इस प्रकार किसी लड़के को गोद ले लेते हैं, तो जब उनकी लड़की बड़ी होगी एवं होश संभालेगी, तो उसमें तथा गोद लिए लड़के—दोनों में एक-दूसरे के लिए वैमनस्य व घृणा पैदा हो जायेगी।

राजा ने अपनी रानी से कहा, "गिरीशदा! मैं अब इस भयानक परिस्थिति से दो-चार हूँ। इससे बचने के लिए सोचता रहा हूँ, बहुत सोचता रहा हूँ और अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सबसे अच्छा उपाय यही है कि इस लड़की को मरवा दिया जाय।"

गिरीशदा (रानी का नाम) ने राजा को एक अत्यन्त अनोखा उत्तर दिया। वह उत्तर राजा के प्रति उसके व्यवहार और कर्तव्य का प्रदर्शन करता था। उसने कहा, "आप जानते हैं कि जब से मैं यहाँ आयी हूँ मैं आपके साथ राज्य के सुख-सौहित्य, भोग-विलास के उपयोग के लिए अपनी निजी कोई इच्छा नहीं रखती हूँ। मैंने अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को सम्पूर्ण रूप से आपकी इच्छा में समो डाला है। मेरा व्यक्तित्व और अस्तित्व आप में विलीन हो गया है तथा इसे केवल उस समय तक बनाये रखा है, जब तक आपकी सेवा के काम आ सकता है, आपके उद्देश्य में बाधा डालने के लिए नहीं। यह आपकी इच्छा है कि लड़की (राजकुमारी) को दूर कर दिया जाय, हमेशा-हमेशा के लिए। इसे निःसंकोच दूर कर दिया जाय! मैंने अपने दिल से—दिल की गहराइयों से इसे कभी अपनी पुत्री नहीं कहा।"

लड़की को आधी रात के समय महलों से दूर ले जाया गया और कुछ घण्टों के पश्चात् राजा आया। उन्होंने गिरीशदा को बताया कि लड़की को मार डालने के लिए जल्लादों के हाथ सौंप दिया गया है। रानी शान्त, धीर, संयत-मन और प्रसन्न-चित्त रही, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। यही ज्ञान की सबसे ऊँची स्थिति तथा वरदान है कि मनुष्य बाहरी परिस्थितियों

से, चाहे वे कैसी भी क्यों न हों, विचलित न हो।

राजा ने सोचा कि अब सभी लोग खुश हो गये होंगे। एक-दो वर्ष के पश्चात् एक नन्हें-मुन्ने पुत्र का जन्म हुआ। लड़का सबको प्यारा लगता था। जब वह चार-पाँच वर्ष का हुआ। तो फिर एक कोलाहल उठ खड़ा हुआ। राजा ने कहा, "इस समय जो परिस्थितियाँ पैदा हो गयी हैं, उन्हें देखते हुए उचित यही लगता है कि इस बच्चे को भी मौत की गोद में सौंप दिया जाय। यदि यह लड़का जीवित रहता है, तो भीषण गृह-युद्ध अवश्यंभावी है। इसलिए राष्ट्र की शान्ति के लिए इस बच्चे को मरवा डालना ही होगा।"

सुनकर रानी मुसकराती रही। हर्ष-सूचक स्वर में बोली, "मेरा वास्तविक अपना आप समग्र राष्ट्र ही है। मेरा व्यक्तिगत या निजी कुछ भी नहीं है। मैं सूर्य के समान हूँ, जो देता ही देता है। सूर्य की भाँति हम भी नहीं लेते। हमें त्याग करना चाहिये। जब हम आसक्ति का भाव नहीं रखते, किसी वस्तु से चिपके नहीं रहना चाहते, तो वह कौन-सी बात है, जो हमारी खुशी, हमारे सुख को नष्ट कर सकती है? सूर्य सदा देता और देता ही चला जाता है, फिर भी वह अभी तक चमक रहा है। त्याग की प्रवृत्ति किसी दुःख-शोक को पास फटकने नहीं देती।"

उस लड़के को भी रानी से अलग कर दिया गया। अर्थात् जल्लादों के हवाले कर दिया गया। फिर कुछ एक-दो वर्षों के उपरान्त एक और बच्चा पैदा हुआ। और वह भी जब तीन-चार वर्ष का हुआ, तो उसी तरह त्याग दिया गया।

अब सोचिये रानी किस प्रकार अपने धैर्य और मन को संयत एवं स्थिर रख सकी? उस दिन से, जिस दिन से वह इस महल में आयी थी, वह प्रतिदिन अपने एक एकान्त कमरे में चली जाया करती, जहाँ उसने पुराने चीथड़े वस्त्र सुरक्षित रखे हुए थे। यह उसका शान्त-एकान्त कमरा था। वहाँ वह अपने सभी सुन्दर व कीमती वस्त्र उतार देती और पुराने वस्त्र पहन लेती। इस अत्यन्त साधारण लिबास में वह जान लेती 'मैं वही

हूँ। और इस भिखारी लिबास में वह अपने दैवी भाव—अपने ईश्वरत्व—को महसूस करती और देखती। शेक्सपियर ने ठीक ही कहा है, "उस व्यक्ति का मस्तिष्क व मन अशान्त तथा परेशान रहता है, जो सिर पर ताज पहन लेता है।"

वह रानी अपने हृदय की गहराइयों से यह समझती थी कि वह वही लड़की है, जो झील के किनारे चहकती और गाती रहती थी। वह राजा के महल में बन्दी बना दी गयी है और उससे स्वाधीनता व स्वच्छन्दता छीन ली गई है। परन्तु उसने अपने आपको कभी दुःखी नहीं किया था और उसने अपने आपको पार्थिव विषयों में उलझने नहीं दिया था। उसने इस या उस किसी भी वस्तु से मन लगा नहीं रखा था। वह सदा वीतराग रहती थी। उसका अपना सच्चा अपना आप इर्द-गिर्द की परिस्थितियों, परिवेश की घटनाओं से सर्वथा अलग-थलग एवं अप्रभावित रहता था। वह निरन्तर ईश्वर-चिन्तन व ब्रह्म-भाव में डूबी रहती थी।

इस तरीके से उसने सब सम्बन्धों, सब प्रकार के आसक्ति-भाव, एवं कामनाओं को दूर फेंक कर अपने आपको सुसंस्कृत शुद्ध बना लिया था। उसने अपने ऊपर कोई दायित्व नहीं ले रखा था। वह किसी व्यक्ति या कर्तव्य से बँधी हुई नहीं थी। इस तरह से उस रानी ने राजमहलों के आवास की अवधि में अपने आपको ऊँचा रखा, अपने धैर्य को सदा स्थिर रखा।

एक रात, राजा उसके पास आये और बोले कि उनके लिए न तो यह उचित है और न ही संभव कि वे आये दिन अपने बेटों और बेटियों को मरवा दिया करें। यह सिलसिला अधिक समय तक नहीं चल सकता, और वे किसी का बच्चा गोद लेने का विचार भी पसन्द नहीं करते। इसलिए सोच-विचार के पश्चात् वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उनके लिए यह सबसे अच्छी बात है कि वे फिर विवाह करें और इस तरह शान्ति की पुनः स्थापना करें।

रानी ने राजा के इस विचार को सराहना के साथ स्वीकृत कर लिया,

क्योंकि वह राजा से कभी अपने लिए सुख ग्रहण नहीं करती थी। उसके सुख का स्रोत राजा के व्यक्तित्व में नहीं था, उसको खुशी, उसको सच्चा सुख अपने ही आत्मा से प्राप्त होता था। सुख का स्रोत उसके अपने ही भीतर विद्यमान था। वह बाहर के पदार्थों में सुख की तलाश क्यों करती? वह अपने अंतःस्थल में व्यापक प्रभु से अविरल सुख का उपभोग करती थी। उसके हृदय में—लोभ, लालच, इच्छाओं, आकांक्षाओं से मुक्त हृदय में—अपार सुखों का सागर ठाठें मार रहा था।

रानी की इस एकरस, आनन्द-मग्न अवस्था को देखकर राजा विस्मित विमुग्ध रह गये और उन्होंने उससे पूछा कि वह क्या करना चाहती है? रानी ने कहा कि उनकी जो इच्छा है, वही उसकी है। राजा ने उसे बताया कि वह यहाँ रहेगी, तो शान्ति-व्यवस्था भंग हो सकती है। उसके लिए अच्छा होगा कि वह यहाँ से चली जाय।

राजा के कहने की देर ही थी कि रानी ने तुरन्त राजसी वस्त्र उतार कर रख दिये और वही पुराने वस्त्र धारण कर लिए एवं महलों से चली गयी। वह प्रसन्न थी। हृदय हर्ष से भरा था। अपने पिता के पास चली गयी। उसका पिता भी उसके आने पर बहुत प्रसन्न हुआ। राजा का जो सेवक उस बूढ़े महात्मा के पास रखा गया था, उसे वापस राजा के पास भेज दिया गया।

एक दिन फिर राजा उस साधु की कुटिया की ओर गये। उनका ख्याल था कि अपनी भूतपूर्व रानी के प्रति सहानुभूति प्रकट करेंगे। उसका हौसला बँधायेंगे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि उसकी भूतपूर्व रानी के चेहरे पर हँसी खेल रही है, उसके हावभाव से किसी दुःख, चिन्ता या असंतोष की लेशमात्र झलक भी प्रकट नहीं होती, तो उन्होंने विचार छोड़ दिया। उन्होंने देखा कि वहाँ का वातावरण और परिस्थिति इतनी सुखद, इतनी आनन्दप्रद थी कि पदच्युत रानी गिरीशदा से सहानुभूति प्रकट करने का अवसर नहीं था। परन्तु राजा ने यह बात उससे अवश्य

कही कि आया वह नयी दुलहन (रानी) का स्वागत करने को आ जायेगी ! गिरीशदा ने राजा की यह बात मान ली ।

गिरीशदा एक बार फिर राजमहलों में पहुंच गयी । उसने स्वागत-प्रबन्धों की ऐसी योजना बनायी तथा हर वस्तु की व्यवस्था इस सुन्दर रीति से की कि उसे देखकर शान्ति-व्यवस्था के अधिकारी लोग और उनकी पत्नियां दंग रह गये । प्रबन्धों के अनुसार दुलहन राजा के पास एक भारी सेना, सोने और जवाहरातों से भरे-पूरे दहेज के साथ आयेगी । अस्तु, दुलहन का आगमन बड़ी धूमधाम व शान-शौकत से हुआ और गिरीशदा तथा राजमहल की अन्य ललनाओं द्वारा बड़े भक्तिभाव से स्वागत किया गया । गिरीशदा ने जब नयी दुलहन को देखा, तो उसने उसे प्यार किया, चूमा और इस प्रकार अपने हृदय से भींच लिया कि मानो वह उसकी माता रही थी । गिरीशदा और उसके साथ की अन्य महिलाएँ नयीं दुलहन के रूप-लावण्य को देखकर चकित रह गयीं, परन्तु वे महिलाएँ पुरानी अथवा पहली के नैतिक सौंदर्य को देखकर उससे भी अधिक आश्चर्यान्वित हुई ।

नयी दुलहन अपने साथ अपने दो छोटे भाई भी लायी थी । उस देश की रीति एवं परम्परा के अनुसार राजघरानों की ललनाएँ और राजसी शासक अथवा मुखिया महलों में प्रवेश करते और एक महान् भोज-समारोह में सम्मिलित होते । इन सब रीति अनुष्ठानों की अध्यक्षता गिरीशदा कर रही थी । लोगों ने जब अपनी भूतपूर्व रानी के शान्त, सुखद, मनोहर कार्यकौशल, स्वभाव तथा व्यवहार को देखा, तो उनके हृदय पिघल गये और आँखों में अनायास ही आँसू बह निकले ।

स्वागत-समारोह तथा अन्य सब रीतियाँ सुचारु रूप में सम्पन्न हो गयी । अब गिरीशदा को जंगल में अपने पिता की कुटिया में लौट जाना था । परन्तु राज्य के लोग जब भोजन करने गये थे, तो उस समय पुरानी रानी के प्रति उनकी जो खेद एवं विरोधपूर्ण भावनाएँ थीं, वे सब गायब हो गयीं और अन्य सब विरोधी बातें भूल गये ।

इधर गिरीशदा जब उन सब लोगों को विदा कह रही थी और राजा से आज्ञा माँगती हुई कह रही थी कि फिर भी यदि उन्हें उसकी आवश्यकता पड़े तो निःसंकोच-भाव से उसे याद करें, उस समय भद्र महिलाओं के हृदय द्रवित हो उठे और वे सुबकियाँ भर-भर कर आँसू बहाने लगीं। उन्होंने अपनी पहली निर्दयता का प्रायश्चित किया। उन्होंने कहा, "आप किसी साधु या भिखारी की नहीं, भगवान् की बेटी हैं।"

इसके पश्चात् उन सब लोगों को बताया गया कि किस प्रकार इस रानी ने राष्ट्र की शान्ति व सुख के लिए अपने बच्चों की मौत के घाट उतार देने की अनुमति दे दी थी। यह सुनकर नयी रानी की आँखों से भी आँसू बहने लगे। उसने कहा, "आपकी बेटी और बेटे मरवा दिये गये थे और अब मैं यहां खून की धारा में विवाह कराने के लिए आयी हूं?"

तब उन लोगों ने राजा को बुरा-भला कहना शुरू किया। सभी लोग उपस्थित थे, नयी दुलहन भी और पहली रानी जाने के लिए तैयार थी। उस समय राजा खड़े हुए और बोले, "ऐ, अधिकारीगण, राज-सभा के सदस्यो और माननीया महिलाओ, तुम सब आँसू बहा रहे हो, केवल गिरीशदा को छोड़ कर, सभी फूट-फूटकर रो रहे हो। मैं भी हर्ष और दुःख के मिले-जुले भावावेग में रो रहा हूँ। मैं तुम लोगों को दोषी नहीं ठहराता, तुम मेरे बच्चे हो। मेरी आँखें आँसुओं से भरी हैं। परन्तु ये आंसू दुःख या अफसोस के नहीं; हर्ष और उल्लास के हैं। मैं चाहता हूँ कि आपके आँसू भी हर्ष के आँसू बन जायें।"

इसके पश्चात् गिरीशदा को सम्बोधित करके बोले, "तुम भी प्रसन्न और खुश रहो। इस सारे राज्य में एकमात्र तुम्हीं खुश रहो।"

अब मालूम हुआ कि नयी दुलहन पड़ोस के देश के राजा की लड़की थी, परन्तु सगी बेटी नहीं थी, गोद ली हुई बेटी थी और उसके दोनों छोटे भाई भी इसी प्रकार पड़ोसी देश के राजा के गोद लिए बेटे थे। ये यतीम बच्चे उस राजा के हाथ लग गये थे। इन बच्चों के सौंदर्य को देखकर उस राजा के मन में उनके प्रति पितृ-स्नेह-भाव जाग उठा था। उसने

इनको अपनी सन्तान के रूप में पाला और पोसा था। वास्तव में ये तीनों बच्चे रानी गिरीशदा और इस देश के राजा की सन्तानें थे।

बात यूं हुई थी कि जिन जल्लादों को इन तीनों बच्चों को मौत के घाट उतार देने के लिए सौंपा गया था, उनसे यह घृणित तथा निर्दयतापूर्ण कुकर्म नहीं हो सका था। इतने सुन्दर, सुलक्षण, निर्दोष बच्चों के गले पर छुरी चलाने की अनुमति किसी निर्दय से निर्दय व्यक्ति का हृदय भी नहीं दे सकता था। वे जल्लाद इन तीनों बच्चों को लेकर उक्त पड़ोसी देश में ले गये। और उस देश के राजा ने इन तीनों बच्चों को काले-कलूटे व्यक्तियों के पास देखा, तो इन्हें निश्चय ही किसी राजघराने की सन्तान समझकर इन हबशी जल्लादों से ले लिया। इन असाधारण सुन्दर कुलीन बच्चों को लेकर उस राजा को बहुत ही हर्ष हुआ था और उसने इन तीनों को अपने सगे बच्चों की भाँति पाला-पोसा और सभ्य सुशिक्षित बनाया था।

अब जब यह सारा भेद इस राज्य के लोगों पर खुल गया, तो यह कैसे हो सकता था, कि यह राजा अपनी बेटी से विवाह कर लेता। अब राज्य के सभी बड़े-छोटे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। पहली रानी और राजा के प्रति उनकी भक्ति पुनः जाग्रत् हो उठी। फलस्वरूप गिरीशदा को पुनः अत्यन्त सम्मानपूर्वक सम्राज्ञी का स्थान प्राप्त हुआ और उसकी सन्तान राज्य की यथार्थ उत्तराधिकारी स्वीकृत हो गयी।

• संसार में त्याग, धैर्य, और पार्थिव विषयों से अनासक्ति से बढ़ कर सच्चे सुख, शान्ति एवं समृद्धि का अन्य कोई स्रोत नहीं हो सकता। जो मनुष्य जीवन में दुःख और सुख में सदा एकरस रहता है, विपत्तियों का हँसकर स्वागत करता है, भोग-विलास के जाल में नहीं फँसता, उसके सामने संसार झुकता है। प्रकृति की समस्त शक्तियाँ उसके पाँव चूमती हैं।

निन्यानवे का चक्कर

एक था जोड़ा पति और पत्नी का। दोनों अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में बड़े सुख और आराम से रहते थे। जीवन-यात्रा आनन्दपूर्वक चल रही थी।

पति दिन-भर खूब मिहनत[1] से काम किया करता। इससे जो कुछ कमाता, उससे गुजारा-मात्र ही चलता। वह अन्य किसी सांसारिक कामना की तड़प नहीं रखता था और न किसी इच्छा पर जान देता था। मन में डाह या स्पर्धा की भावना अथवा घृणा की घुसपैठ नहीं होने देता था। वह बहुत ही अच्छा और ईमानदार मजदूर था। उसका एक पड़ोसी था—बहुत ही धनवान और सम्पत्तिशाली, परन्तु उसके मन में सदा चिन्ताओं, आशंकाओं का जमघट रहता था। सुख और शान्ति के दर्शन स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होते थे!

एक बार एक वेदान्ती साधु उस धनाढ्य व्यक्ति के घर पधारे। उन्होंने धनाढ्य व्यक्ति को बताया कि उसके मन की अशान्ति, चिन्ताओं एवं आशंकाओं का कारण उसके धन व सम्पत्ति ही हैं। उसकी सम्पति ने उस पर अपना प्रभुत्व जमा रखा था और वह उसका दास बना बैठा था! उसका मन एक विषय से दूसरे विषय के पीछे भागता भटकता रहता था।

साधु ने उस धनवान के पड़ोसी निर्धन व्यक्ति की चर्चा करते हुए धनवान से कहा, "तुम उस निर्धन पड़ोसी की ओर देखो। उसके पास कुछ नहीं है, परन्तु उसके मुख-मंडल पर खुशी और आनन्द की बहारें खेलती

1. शुद्ध उच्चारण मेहनत नहीं, मिहनत है।

दिखायी देती हैं। उसका अंग-अंग कितना सुदृढ़ है! उसकी भुजाएँ कितनी बलशाली हैं!! देखकर आश्चर्य होता है और हर्ष भी। वह चलता-फिरता इस तरह नजर आता है कि जैसे वह हार्दिक उल्लास के ताल पर थिरक रहा हो। उसे काम करते हुए सदा गुनगुनाता देखकर ऐसा जान पड़ता है, जैसे उसके मन में आनन्द-संगीत का सोता उफन पड़ा है।"

यह खुशी जिससे वह निर्धन मालामाल था, उसका अंश मात्र भी पड़ोसी धनवान को प्राप्त न था। उसकी सम्पत्ति—घर-बार—ऐसे सजे-सँवरे हुए और भव्य थे कि अन्य लोग देखकर मंत्र-मुग्ध हो जाते थे। परंतु स्वयं उस धनवान का मन बुझा-बुझा-सा रहता था। उसने साधु महात्मा की बातें सुनकर उनकी सच्चाई का परीक्षण करने का विचार किया।

साधु महत्मा के सुझाव के अनुसार धनवान व्यक्ति ने एक दिन पड़ोसी के घर में चोरी-चोरी चुपके-चुपके निन्यानवे (99) रुपये फेंक दिये। दूसरे दिन वे क्या देखते हैं कि उस ग़रीब पड़ोसी के घर आग नहीं जल रही थी। यह पहला दिन था कि ऐसा हुआ, जबकि उस निर्धन के यहाँ प्रतिदिन खूब आग जलती थी और दिन-भर कड़े परिश्रम की कमाई से खरीद कर लाये हुए राशन को पकाया और खाया करते थे। परन्तु उस रात धनवान ने देखा कि पड़ोसी निर्धन के यहाँ चूल्हा नही जला। उसके घर खाना नहीं पका और वह परिवार उस रात भूखा ही रहा।

दूसरे दिन प्रातः वह साधु महात्मा उस धनवान को साथ लेकर पड़ोसी निर्धन व्यक्ति के यहाँ गये और उससे पूछा कि गयी रात उसके यहाँ चूल्हा क्यों नहीं जला था।

निर्धन व्यक्ति ने साधु को सामने पाकर कोई बहाना या कोई बनावटी बात बताने का प्रयत्न न किया। उसने साधु महात्मा के सामने सच्ची बात कह दी। निर्धन ने बताया कि इससे पहले वह प्रतिदिन कुछ ही पैसे कमाया करता था और उन कुछ ही पैसों से सब्जी-तरकारी तथा थोड़ा-सा आटा खरीद लाया करता था। परन्तु उस दिन जिस दिन उनके यहाँ आग

नहीं जलायी गयी थी, उन्हें एक छोटा-सा डिब्बा मिला, जिसमें से उन्हें निन्यानवे (99) रुपये मिले। जब उन्होंने ये निन्यानवे देखे, तो उनके मन में एक विचार उठा कि सौ में केवल एक ही रुपया तो कम है। बस एक रुपया और हो जाय, तो पूरा सौ रुपया बन जायगा।

अब इस एक रुपया की कमी को पूरा करने के लिए उन्होंने सोचा कि वे बीच-बीच में एक-एक दिन का खाना नहीं पकाया करेंगे। और भूखे रहेंगे। इस प्रकार वे कुछ पैसे रोज बचा लिया करेंगे। और एक सप्ताह या कुछ और अधिक दिनों में वे एक रुपया जमा करके निन्यानवे रुपयों के पूरे सौ रुपये बना सकेंगे। बस इसी योजना के अनुसार उन्होंने गत रात खाना न पकाया, न खाया।

यह कहानी सुनाकर स्वामी राम ने कहा कि बस धनवान लोगों की कंजूसी का यही राज है। वे लोग जितना रुपया ज्यादा जमा करते हैं, उतने ही गरीब होते जाते हैं। जब वे निन्यानवे रुपये प्राप्त करते हैं, तो उन्हें सौ बनाना चाहते हैं। और यदि उनके पास 99,000 हो जायें, तो चाहते हैं कि 1,00,000 रुपये हो जायें। इस प्रकार लालच और कंजूसी का बोलबाला हो जाता है और खुशी तथा मन की अशान्ति कम हो ही जाती है।

• आनन्द या खुशी अधिक से अधिक धन जमा करने में नहीं, संतोष में है। निन्यानवे का चक्र मनुष्य को अशान्ति, चिन्ता और दुःखों के चक्र में धकेल देता है।

विपत्तियों की परवा न करो

एक घुड़सवार किसी दूर-दूराज स्थान को जा रहा था। वह एक कुएँ के पास से गुज़र रहा था, जहाँ रहट चल रहा था। कुएँ से जब पानी रहट के द्वारा निकाला जाता है, तो रूँ-रूँ चूँ-चूँ की आवाज़ पैदा होती है। घुड़सवार अपने घोड़े को पानी पिलाने के लिए कुएँ के पास आया। कुएँ से पानी रहट के द्वारा निकल रहा था। घोड़ा, जिसने इस प्रकार की आवाज़ कभी सुनी नहीं थी, डर के मारे कुएँ के पानी की हौज़ी के पास नहीं जाना चाहता था।

घुड़सवार ने रहट चलाने वाले किसान से कहा कि वह यह आवाज़ बन्द कर दे, ताकि उसका घोड़ा पानी पी सके। किसान ने रहट चलाना रोक दिया, जिससे आवाज़ बन्द हो गयी और इसके साथ ही कुएँ से पानी निकलना भी बन्द हो गया। अब हौज़ी में पानी न था। हौज़ी का पानी साथ ही साथ नाली के द्वारा खेतों में चला जाया करता है। घोड़ा हौज़ी के पास तो गया, परन्तु पीता क्या, पानी वहाँ नहीं था।

अब घुड़सवार ने किसान से शिकायत की, "किसान भैया! तुम भी अजीब आदमी हो। मैंने तुम्हें आवाज़ बन्द करने को कहा था, पानी बन्द करने को नहीं। क्या तुम मे एक अजनबी यात्री के प्रति इतनी सहानुभूति भी नहीं कि मेरे घोड़े को कुएँ से पानी पीने देते।"

किसान ने बड़े विनम्र भाव से उत्तर दिया, "श्रीमान् जी, मैं पूरे हृदय से सहानुभूति रखता हूँ और चाहता हूँ कि आपकी सेवा का श्रेय प्राप्त करूँ और आपके प्यासे घोड़े को इतना पानी दूँ कि सारा पी न सके, परन्तु

करूँ क्या, आपकी माँग ऐसी है कि पूरी करना मेरी शक्ति से बाहर है। यदि आप चाहते हैं कि पानी मिले और आपका घोड़ा प्यास बुझा सके, तो आप अपने घोड़े को सिखाओ या विवश करो कि वह उस समय पानी पी सके, जब आवाज आ रही हो, क्योंकि जब हम आवाज को बन्द करते हैं, तो पानी कुएँ से नहीं निकलता। रहट चलने से जहाँ आवाज पैदा होती है, वहाँ कुएँ से पानी भी निकलता है। आवाज का पैदा होना और कुएँ से पानी निकलना, दोनों काम साथ-साथ चलते हैं।

॰ अब जाहिर है कि घोड़ा इस कुएँ से प्यासा ही चला जायगा या प्यास के मारे जान दे देगा, क्योंकि वह रहट की आवाज से डरता है और आवाज के रहते हुए कुएँ की जल-प्रणाली के पास जाने का साहस नहीं रखता। यही अवस्था संसार में प्रत्येक मनुष्य की है। यह संसार दुःख-विघ्नों के शोर से भरा पड़ा है, यहाँ तक कि इन्सान के मन में भी सदा एक हंगामा रहता है। जो मनुष्य इन हंगामों, सांसारिक शोर-गुल, विघ्न-विपत्तियों की परवा न करके इनके मध्य रहकर भी अपने कर्तव्य को, ऊँचे ज्ञान की प्राप्ति में अपने लक्ष्य के पाने की कोशिशों को जारी रखता है, वही सफल होता है।

जब अनारों में रस सूख गया !

एक राजा शिकार खेलने के लिए जंगल में जा निकले। शिकार का पीछा करने की गर्मा-गर्मी में वे अपने साथियों से बिछुड़ गये। कड़ी धूप में घूमते-घूमते प्यास के मारे निढाल-से होने लगे। संयोगवश जंगल में एक ऐसे स्थल पर पहुँच गये, जहाँ एक बहुत सुन्दर बाग़ था। वे बाग़ के भीतर चले गये, परन्तु एक साधारण शिकारी के लिबास में होने के कारण राजा को बागवान पहचान न सका। ग़रीब ग्रामीण बाग़वान (माली) पहचान भी कैसे सकता था, उसने कभी राजा को अपनी आँखों से देखा नहीं था।

राजा ने माली से कहा कि वह उन्हें पीने के लिए कुछ ला दे, क्योंकि प्यास से उनका बुरा हाल हो रहा था। माली सीधा बाग़ में गया और अनार के वृक्ष से कुछ अनार तोड़ कर उनके रस से भरा एक बहुत बड़ा प्याला ले आया। राजा उस रस को गटागट पी गये, परन्तु उससे उनकी प्यास न बुझी। उन्होंने माली से एक और रस-प्याला लाने को कहा। माली अनार के वृक्षों के झुण्ड में चला गया। उसके जाने के पश्चात् राजा ने अपने मन में सोचना आरंभ किया, "यह बाग़वान बहुत अमीर नजर आता है। यह व्यक्ति एक आधे मिनट में ताजा रस से भरा बहुत बड़ा प्याला मुझे लाकर दे सका है। ऐसे समृद्धिशाली व्यवसाय के मालिक पर भारी आय-कर लगाना चाहिये इत्यादि।"

दूसरी बार माली को विलम्ब हो गया, और विलम्ब होता चला गया। एक घण्टा बीत गया, पर राजा के लिए रस का प्याला लेकर न लौटा।

राजा को आश्चर्य होने लगा, "यह क्या बात है? मैंने जब पहले माली से पीने के लिए कुछ लाने को कहा था, तो वह अनारों के रस का भरा प्याला एक मिनट के भीतर ही ले आया था और अब वह एक घण्टा से अनारों का रस निकाल रहा है, और अभी प्याला भरा नहीं गया। ऐसा क्यों है?"

एक घण्टा के पश्चात् कहीं जाकर माली ने एक प्याला लाके राजा को जो दिया, वह भरा हुआ न था। राजा ने इसका कारण पूछा, "आखिर यह प्याला इतना ख़ाली क्यों रह गया है। इससे पहले जो प्याला तुम लाये थे, वह तो लबालब भरा हुआ था!"

माली ने, जो एक साधु पुरुष था, उत्तर दिया, "मैं जब पहली बार आपके लिए अनारों का रस लेने गया था, उस समय हमारे राजा की नीयत एवं मनोवृत्ति बहुत ही अच्छी, बहुत ही दयामय थी और जब मैं दूसरी बार आपके लिए अनारों का रस लेने के लिए गया, तो उस समय हमारे राजा का उदार, करुणामय एवं स्नेहशील मनोभाव अवश्य बदल गया होगा। इसके सिवा मैं अपने अनारों की भरी-पूरी प्रकृति में अकस्मात् परिवर्तन आने के विषय में और कोई उत्तर नहीं दे सकता।"

राजा ने अपने अन्तर आत्मा में झांका और देखा कि माली का कहना पूर्णरूपेण सत्य था। राजा ने जब पहले बाग़ में प्रवेश किया था, तो उनका मन लोगों के प्रति उदारता, प्रेम और दया से भरपूर था, यह सोच कर कि ये लोग बहुत ग़रीब हैं, और सहायता की आवश्यकता रखते हैं। परन्तु जब यह बूढ़ा व्यक्ति उनके लिए अनारों के रस का भरा-पूरा प्याला बहुत ही थोड़े समय में लेकर आ गया, तो राजा का मन बदल गया, विचार बदल गये, दृष्टिकोण बदल गया। मन विपरीत दिशा में सोचने लग गया। राजा की ओर से प्रकृति की अनुकूलता, विमुखता प्रकृति के शाश्वत मंगलमय विधान के विरुद्ध आचरण—बाग में अनारों पर प्रभाव डाले बिना न रहा। जिस समय राजा द्वारा प्रेम के विधान का उल्लंघन हुआ, उसी समय वृक्षों ने उनके प्रति रस को पीछे खींच लिया—अपने रस को पीछे रोक लिया अथवा सुखा लिया।

आप जब तक प्रकृति के साथ पूर्ण रूप से अनुकूलता, एक रूप एवं एकता रखते हैं, तब तक आपका मन विश्व-ब्रह्माण्ड के साथ एकरूपता व एकत्व लिए रहता है और आप हर एक से एवं सबसे एकता अनुभव करते हैं—हर एक और सब में एकत्व देखते हैं। समस्त परिस्थितियाँ, परिवेश, इर्द-गिर्द की समस्त चीजें, यहाँ तक कि हवाएँ और लहरें भी आपके पक्ष में हो जाती हैं। और जब आप विश्व-ब्रह्माण्ड, प्रकृति के प्रति विरोध-भाव रखेंगे, उसी समय आपके मित्र, बन्धु, सम्बन्धी आपके विरुद्ध हो जायेंगे—उसी समय आप सारे संसार को अपना शत्रु बना लेंगे—सारा संसार सशस्त्र शत्रु के रूप में आपके विरुद्ध उठ खड़ा होगा।

• प्रेम सबसे एकत्व—एकरूपता—स्थापित करता है तथा संसार की समस्त शक्तियों को अपना साथी बना लेता है और घृणा विरोध और फूट को जन्म देती है।

सुक़रात और उनकी बीवी

सुकरात की एक बीवी थी, संसार में सबसे अधिक अवांछनीय। एक दिन सुकरात किसी दार्शनिक विषय के सोच-विचार में तल्लीन थे। उनकी बीवी, जैसी कि उसकी आदत थी, उनके पास आयी और बड़ी कठोर एवं कर्कश भाषा में बोली। उन्हें बुरा-भला कहा, उनका अपमान किया और गालियाँ तक दीं। वह उनका ध्यान अपनी ओर खींचना चाहती थी। उसने कहा कि वे पहले उसकी बात सुनें—वे यह काम करें, वह काम करें। परन्तु सुकरात थे कि अपनी दार्शनिक चिन्ता में डूबे ही रहे। उनका तरीका यह था कि जब तक वे विचाराधीन समस्या का समाधान न कर लेते, तब तक उससे ध्यान न हटाते।

उनकी बीवी उन पर जोरों से गरजती और बिजलियाँ गिराती रही और वे मस्त—कुछ सुन ही नहीं रहे थे। इससे उनकी बीवी का क्रोध सीमाओं को पार कर गया और उसने आव देखा न ताव गंदे-गंदले पानी से भरा एक बर्तन उठाया और सुकरात के सिर पर उँडेल दिया।

आप समझते होंगे कि सुकरात क्रोध से भड़क उठे होंगे, बहुत घबरा गये होंगे या दुःख से कुछ निढाल-से हो गये होंगे। नहीं, बिल्कुल नहीं। इसके विपरीत वे मुसकरा उठे, और मुसकराहट से हँसी फूट पड़ी इन शब्दों की लहर से, "आज इस कहावत का भी प्रमाण मिल गया, 'कई बार जो गरजते हैं, बरस भी पड़ते हैं'।"

उनकी बीवी सदा गरजती ही थी, वर्षा कभी नहीं होती थी, परन्तु आज वह गरजी, तूफान उठाया उसने, और उसी समय वर्षा भी हो

गयी।

यह बात कहकर सुकरात महोदय फिर अपनी दार्शनिक चिन्ता में लीन हो गये।

इससे यह पता चलता है कि लोगों को क्रोध पर काबू पाने की अपनी क्षमता से हताश नहीं होना चाहिये। यदि एक व्यक्ति सुकरात अपने क्रोध पर इतना सम्पूर्ण संयमन कर सकता है, तो सारे लोग भी कर सकते हैं। आज भी क्या ऐसे लोग नहीं हैं, जिन्होंने अपने क्रोध और अपनी आदतों पर नियंत्रण कर रखा है? निश्चय ही ऐसे लोग हैं और आप भी यत्न करके ऐसा कर सकते हैं।

• पारिवारिक सम्बन्धों को, बजाय अपने कामों में बाधक बनाने के, आत्म-संयम और आत्म-ज्ञान का साधन बनाइये। यह सर्वथा आपके वश की बात है।

नरक जब स्वर्ग में बदल गया !

इंगलैण्ड में एक ईसाई पादरी रहता था। उसने कुछ महापुरुषों और वैज्ञानिकों डार्विन और हक्सले की मृत्यु के सम्बन्ध में पढ़ा। उसने मन में सोचना आरंभ कर दिया कि वे लोग स्वर्ग में गये थे या नरक में। वह सोचता और सोचता और सोचता ही चला गया। उसने अपने आप से कहा, "उन लोगों ने कोई पाप-कर्म नहीं किया और फिर भी वे बाइबल और ईसाई-धर्म में विश्वास नहीं रखते थे; वे ईसाई नहीं थे नियमित रीति से। वे अवश्य ही नरक में गये होंगे।" परन्तु वह अपने आप में इस विषय पर किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचा।

उसने सोचा, "वे अच्छे इन्सान थे। उन्होंने संसार में कुछ अच्छे काम किये थे। वे नरक के अधिकारी नहीं थे। फिर वे कहाँ गये?" सोचते-सोचते पादरी सो गया और उसने अत्यन्त आश्चर्य-जनक स्वप्न देखा। उसे ऐसा लगा कि वह स्वयं भी मर गया है और उसे सबसे उत्तम व ऊँचे स्वर्ग में ले जाया गया है। उसने वहाँ उन सब लोगों को देखा, जो उनके विचार के अनुसार वहाँ होने चाहिये थे। उसने अपने उन सब ईसाई भाईयों को भी देखा, जो चर्च में जाया करते थे। तब उसने हक्सले और डार्विन नामक वैज्ञानिकों के विषय में पूछा। स्वर्ग के दरबान या किसी अन्य दरोगा ने उसे बताया कि वे वैज्ञानिक लोग सबसे नीचे दर्जे के नरक में हैं।

अब इस पादरी ने पूछा कि क्या उसे विमान द्वारा उस निम्नतम नरक में जाने की आज्ञा मिल सकती है ताकि वह उन लोगों से भेंट करे और

उनमें पवित्र बाइबल का प्रचार करे और उन्हें बताये कि उन्होंने बाइबल की शिक्षा में विश्वास न करके बहुत ही घृणित पाप किया था ?"

बहुत टालमटोल और वाद-विवाद के पश्चात् स्वर्ग का वह दरोगा यह बात मान गया कि वह उस (पादरी) के लिए निम्नतम नरक का टिकट ला देता है। आपको आश्चर्य होगा कि आप नरक और स्वर्ग में भी अपनी रेलवे-कारों में आते और जाते हैं। परन्तु यह बात ठीक थी। वह पादरी रेलवे-यातायात और टेलीग्राफों से प्लावित परिवेश व वातावरण में जन्मा और पला था। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि स्वप्न-लोक में उसके विचारों में रेलवे, नरक और स्वर्ग के साथ खलत-मलत हो गयी थी।

खैर, उस पादरी ने प्रथम श्रेणी का टिकट लिया। रेलवे गाड़ी चल पड़ी और आगे बढ़ती गयी—आगे बढ़ती गयी। रास्ते के मध्य कुछ स्टेशन पड़े, क्योंकि वह उच्चतम स्वर्ग से निम्नतम नरक के लिए यात्रा कर रहा था। वह मध्यवर्ती स्टेशनों पर रुका और उसने देखा कि वहाँ के हालात स्वर्ग की अपेक्षा खराब थे। ज्यों-ज्यों वह और नीचे उतरता गया, परिस्थितियाँ और भी खराब होती चली गयी। एक बहुत बड़ा अन्तर दिखायी देता था उसे स्वर्ग से। जब वह निम्नतम नरक के एक पहले स्टेशन पर पहुँचा, वह अपने आपको होश में न रख सका। वहाँ से इतनी भयंकर दुर्गन्ध एवं सड़ांद उठ रही थी कि उसे अपनी नाक को अपने समस्त अंगोछों एवं रूमालों से छिपा और दबा लेना पड़ा, फिर भी उस सड़ांद के प्रभाव से न बच सका। बस गनीमत जानिये कि वह बेहोश न हुआ, अन्यथा वह ग़श खाकर गिर पड़ा होता। वहाँ से नीचे के स्थल से रोने, चिल्लाने, सिर पीटने तथा दाँत पीसने की इतनी आवाजें उठ रही थीं कि वह पादरी सहन न कर सका। इस भयंकर और घिनावने दृश्यों के सामने वह अपनी आँखें खुली न रख सका। वह अपने इस हठ के लिए पछता रहा था, कि उसे निम्नतम नरक की सैर करायी जाय।

थोड़े ही मिनटों के पश्चात् उसने रेलवे-प्लेटफार्म पर लोगों को

यात्रियों की सुविधा के लिए चिल्लाते हुए सुना, "निम्नतम नरक, निम्नतम नरक।" वहाँ स्टेशन की दीवारों पर लिखा हुआ था, "निम्नतम नरक।" परन्तु पादरी के आश्चर्य का ठिकाना न था। उसने प्रत्येक व्यक्ति से पूछा, "यह निम्नतम नरक नहीं हो सकता। यह तो उच्चतम स्वर्ग के लगभग समान हो सकता है। यह निम्नतम नरक नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। यह तो स्वर्ग होना चाहिये।"

रेलवे के गार्ड या कण्डक्टर ने पादरी को बताया कि यही निम्नतम नरक है और इतने में एक व्यक्ति आया और बोला, "उतरिये जनाब, यहीं उतर जाइये, यही आपका गन्तव्य स्थान है।"

पादरी बेचारा वहीं उतर पड़ा, परन्तु वह बहुत हैरान था। वह समझता था कि निम्नतम नरक उस निम्नतम नरक से और भी खराब होगा, जो इससे एक मंजिल पहले पड़ा था। परन्तु यह तो उच्चतम स्वर्ग का मुकाबला कर रहा है। वह रेलवे-स्टेशन से बाहर आया और क्या देखता है कि वहाँ सुरम्य बाग, भव्य बगीचे हैं, मनोहर सुगन्धि-युक्त फूल हैं और सुरभित समीर के झोंके उसके शरीर को स्पर्श करते हुए बह रहे हैं। वहाँ उसे एक लम्बा-सा व्यक्ति मिला। उसने उसका नाम पूछा और सोचा कि वह इस व्यक्ति में ऐसी बातें देखता है या यह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे वह पहले कहीं देख चुका था। वह व्यक्ति आगे-आगे जा रहा था और वह इसके पीछे-पीछे और जब उस व्यक्ति ने आवाज दी, तो पादरी खुशी से उछल-सा पड़ा। दोनों ने एक-दूसरे से हाथ मिलाया और पादरी ने उसे पहचान लिया। वह कौन था?—वह था हक्सले।

पादरी ने उससे पूछा, "यह क्या है? यही निम्नतम नरक है क्या?"

हक्सले ने उत्तर दिया, "जी हाँ, इसमें कोई संदेह।"

पादरी ने कहा, "मैं आप लोगों को उपदेश करने आया हूँ। परन्तु पहले यह तो बताइये कि यह क्या बात है कि मैं अपने सामने एक आश्चर्यजनक दृश्य या चमत्कार देख रहा हूँ।"

हक्सले ने कहा, "आपकी यह धारणा या सोचना गलत नहीं कि यहाँ

हालत बहुत ही खराब होगी। वास्तव में मैं जब यहाँ आया था, तो सचमुच ही इस जगह की अवस्था बहुत ही बुरी से बुरी थी—यह विश्व में संभावनातीत ख़राब व निकृष्ट नरक था। यह सबसे अवांछनीय स्थान था, जो मैंने देखा।" कुछ स्थानों की ओर संकेत करते हुए हक्सले ने फिर कहना आरंभ किया, "यहाँ गंदी खाइयाँ थी।" एक अन्य स्थल की ओर संकेत करके उसने कहा, "यहाँ जलता हुआ लोहा, लोहे की सलाखें थी।" फिर एक अन्य स्थान की ओर संकेत करके बोला, "यहाँ गर्म-गर्म जलती हुई रेत थी," और और "यहाँ गोबर सड़ रहा था।"

हक्सले ने बताया, "हमीं थे, जो सबसे पहले इन सबसे अधिक गंदी खाइयों में रखे गये, परन्तु हम यहाँ अपने हाथों से पास के जलते हुए लोहे पर पानी डालते रहे थे और हम इस काम मे सतत लगे रहे। इन खाइयों से गंदा पानी, इनके तट पर पड़े हुए गर्म जलते हुए लोहे पर डालते रहे। इसके पश्चात् निम्नतम नरक के दारोगे हमें उन स्थानों पर ले गये, जहाँ जलता हुआ तरल लोहा था, परन्तु उस समय तक कि जब हमें दारोगा-गण उस स्थान पर ले गये, अधिकांश लोहा बिल्कुल ठण्डा पड़ गया था। अधिकांश लोहा हाथ में पकड़ा जा सकता था और तब भी लोहे का बहुत-सा अधिक भाग जलती हुई तरल अवस्था में था—आग था आग। तब जो लोहा बिल्कुल ठण्डा हो चुका था, उसकी सहायता से अर्थात् उसको आग के सामने रख कर, हम उससे कुछ मशीनें तथा कुछ अन्य हथियार बनाने में सफल हो गये।

"इसके पश्चात् हमें तीसरे स्थान पर ले जाया गया, जहाँ गोबरों के अम्बार लगे हुए थे। और हमने अपने हथियारों, यन्त्रों, लोहे के फावड़ों की सहायता से तथा मशीनों द्वारा खोदने का काम आरंभ कर दिया। इसके बाद हमको अन्य एक प्रकार की भूमि पर ले जाया गया। वहाँ भी हमने अपने यन्त्रों, मशीनों जो हम तैयार कर चुके थे, की सहायता से कुछ चीजें उस भूमि में फेंक दी। इन चीजों ने खाद का काम दिया और इस प्रकार हम धीरे-धीरे नरक को यथार्थ स्वर्ग में बदल लेने में सफल हो गये।"

अब समझने की बात यह है कि निम्नतम नरक में समस्त प्रकार की सामग्री विद्यमान थी, जिसे केवल उनके यथार्थ स्थानों व स्थितियों में रख कर उच्चतम स्वर्ग बनाया जा सकता था। अस्तु वेदान्त (भारत का सर्वोच्च दर्शन) कहता है कि तुम में परमेश्वर मौजूद है और तुम में बेकार तुच्छ शरीर भी विद्यमान है, परन्तु तुमने ये चीजें गलत स्थान पर रख दी हैं। आपने चीजों को उलट-पलट कर रख दिया है—बेढंगी, ऊबड़-खाबड़ अवस्था में डाल दिया है। आपने गाड़ी को घोड़े के आगे जोत दिया है और इस तरह से—अपने इस ज्ञान-शून्य आचरण से आप स्वयं इस संसार को अपने लिए नरक बना लेते हैं। आपको कोई वस्तु नष्ट नहीं करना, और न किसी वस्तु को खोदना है। आप अपने इस कामनाशील—लालसा-प्रेरित भाव को या अपनी इस स्वार्थ-परता को या अपनी इस क्रोधमयी प्रकृति तथा अपने अन्य किसी पाप को, जो ठीक नरक या स्वर्ग के समान हैं, नष्ट नहीं कर सकते, किन्तु आप इनको पुनः व्यवस्थित कर सकते हैं—दोबारा सुव्यवस्था-सूत्र मे पिरो सकते हैं। कोई ऊर्जा, कोई शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती, प्रत्युत आप इस नरक को पुनः व्यवस्थित कर सकते हैं और इसे उच्चतम स्वर्ग में परिणत कर सकते हैं।

• अपनी शक्ति का ठीक व यथार्थ प्रयोग करके—पदार्थों या सामग्री-राशि को प्रकृत व्यवस्था में सजा कर—नरक को भी स्वर्ग में परिणत किया जा सकता है।

> अमल से जिन्दगी बनती है जन्नत भी जहन्नुम भी।
> यह ख़ाकी अपनी फ़ितरत[1] से न नूरी[2] है न नारी[3] है।।

1. प्रकृति 2. प्रकाशमीस, देदीप्यमान, 3. नारकीय।

समस्त ज्ञान प्राप्त करने का रहस्य

दो व्यक्ति राजा के पास आये और उन्होंने प्रार्थना की कि उन्हें महल को अलंकृत करने तथा दीवारों पर चित्रकारी करने के काम के लिए नौकर रख लिया जाय। इन दोनों प्रतिस्पर्धी कलाकारों ने राजा की सेवा में इस उद्देश्य के लिए प्रार्थना की थी कि उस सारे कार्य का भार उन्हें सौंप दिया जाय। राजा ने उन्हें नौकर रखने से पहले उनकी योग्यता व कार्य-कौशल की परीक्षा लेनी चाही। इस उद्देश्य के लिए राजा ने उन्हें एक-एक आमनी-सामनी दीवार चित्रकारी के लिए दे दी।

दोनों आमनी-सामनी दीवारों के मध्य एक पर्दा डाल दिया गया, ताकि दोनों कलाकार अपनी-अपनी निश्चित दीवार पर स्वतंत्र रूप से अपनी चित्रकारी के जौहर दिखा सकें और एक-दूसरे को यह पता न चल सके कि वे क्या-क्या और कैसी चित्रकारी कर रहे हैं। वे दोनों एक मास तक अपनी-अपनी दीवार पर काम करते रहे और काम के समाप्त होने पर एक कलाकार राजा के पास आया और सूचना दी कि उसने अपना कार्य सम्पन्न कर लिया है। वह चाहता है कि महाराज आकर देख लें कि उसने कैसा काम किया है।

राजा ने दूसरे कलाकार से पूछा कि उसे अपना काम पूरा करने में और कितना समय लगेगा। उसने प्रणाम करके निवेदन किया, "महाराज ! मैंने भी अपना कार्य सम्पन्न कर डाला है।"

अब राजा ने उनका काम देखने के लिए एक दिन निश्चित कर दि
उस दिन राजा अपने पूरे मंत्रिमंडल और दरबारियों के साथ उन [

कारों का कार्य-कौशल देखने के लिए महल के उस भाग में पधारे। पहले चित्रकार द्वारा चित्रित दीवार के सामने से पर्दा उठा दिया गया। राजा, मन्त्रिमण्डल तथा अन्य दरबारियों व अधिकारियों ने देखकर चित्रकार की दक्षता की बहुत प्रशंसा की। उन्हें यह चित्रकारी अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत और अभूतपूर्व लगी। वे सभी मन्त्र-विमुग्ध होकर रह गये।

राजा के मंत्रियों व दरबारियों ने राजा के कानों में कहा, कि इससे अधिक अच्छी चित्रकारी की संभावना या आशा नहीं की जा सकती, इसलिए दूसरे चित्रकार के काम को देखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस चित्रकार ने उनकी आशाओं से बहुत ही बढ़-चढ़कर काम कर दिखाया था। उन्होंने सोचा कि महल के अलंकृत करने तथा दीवारों की चित्रकारी का सारा काम इसी कलाकार को दे देना चाहिये। परन्तु राजा उन लोगों से अधिक समझदार थे। उन्होंने आदेश दिया कि दूसरे चित्रकार द्वारा चित्रित सामने की दीवार के आगे से पर्दा हटा दिया जाय और उसका काम भी देखा जाय।

पर्दा हटा दिया और राजा तथा उनके समस्त मंत्री-दरबारी आदि सभी लोग आश्चर्य से अभिभूत हो गये। उनके मुँह खुले के खुले रह गये, सांस रुक गया और हाथ आश्चर्य के मारे ऊपर उठे के उठे रह गये। "ओ! आश्चर्यों का आश्चर्य—अत्यन्त अद्भुत है यह!"

आप जानते हैं कि उन्होंने क्या मालूम किया? देखिये, दूसरे चित्रकार ने महीना भर दीवार पर कुछ भी चित्रकारी नहीं की थी। उसने सारा समय दीवार को अधिक से अधिक चमकाने और जहाँ तक संभव था पारदर्शी बनाने में लगा दिया। उसने दीवार को रगड़ना जो आरम्भ किया तो रगड़ता चला गया। यहाँ तक कि वह दीवार पूर्णरूपेण पारदर्शी हो गयी। अत्यन्त सुन्दर दिखायी देने लगी। दीवार का अच्छी तरह से परीक्षण करने पर देखा गया कि सामने की दीवार पर उसके प्रतिस्पर्धी चित्रकार ने जो चित्रकारी कर रखी थी, वह इस दीवार में सम्पूर्ण रूप से प्रतिबिम्बित हो रही थी। यह दीवार अधिक साफ़, एकसार और अधिक सुन्दर भी थी,

जबकि दूसरी दीवार खुरदरी, असमतल और भद्दी दिखायी देती थी। उस दीवार की समूची चित्रकारी इस समतल, एकसार, सुन्दर दीवार में प्रतिबिम्बित हो रही थी और फलस्वरूप दूसरी दीवार ने पहली दीवार के सौन्दर्य में और भी समृद्धि कर दी।

यह बात उल्लेखनीय है कि उस समय के राजा और लोग दर्पण से परिचित नहीं थे। उन दिनों दर्पण का आविष्कार नहीं हुआ था और उन्होंने इस दीवार का गंभीर निरीक्षण व परीक्षण न किया। प्रत्युत उन्होंने मुक्त कण्ठ से कहा, "महाराज! यह चित्रकार इस दीवार के भीतर दूर तक घुस गया था। उसने दो-तीन गज दीवार खोदी है और प्रत्येक चित्र का चित्रण किया है।"

प्रतिबिम्ब दर्पण में उतनी दूरी पर दिखायी देते थे, जितनी दूरी पर चित्रकारी थी दर्पण से।

अब विचार कीजिये कि जिस प्रकार इस कलाकार ने दीवार को रेत से मांजा और रगड़ा तथा इतना परिश्रम किया कि दीवार को एक दर्पण बना दिया, स्वामी राम कहते हैं कि उसी प्रकार वे लोग, जो पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहते हैं, सतही या ऊपरी ज्ञान प्राप्त करते हैं, बाहर चित्रकारी करते समय दीवारों को इस तरह चित्रित करना चाहिये कि समस्त प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया द्वारा उन दीवारों को सुन्दर बना लिया जाय।

यह प्रक्रिया है कि अपने हृदय को स्वच्छ, निर्मल बना कर, एकसार व चमकदार बना कर अपने मन या बुद्धि को मांज-रगड़कर दर्पण के समान पारदर्शी बना लीजिये, तब संसार का सारा ज्ञान आपके मन में प्रतिबिम्बित हो उठेगा और आपको सारे विश्व से प्रेरणा प्राप्त होगी।

▫ अपने हृदय पर जमे हुए मल को स्वाध्याय, मनन और सतत सक्रिय चिन्तन द्वारा सर्वथा मिटा कर मन को दर्पण बना लीजिये, विश्व का सारा ज्ञान उसमें प्रतिबिम्बित होने लगेगा।

तर्क का तमाशा

एक बार एक व्यक्ति डा० जानसन के पास आया और कहने लगा, "मैं तबाह हो गया हूँ, बरबाद हो गया हूँ। मैं किसी भी काम के योग्य नहीं रहा हूँ। मैं कुछ कर नहीं सकता। इस संसार में एक व्यक्ति क्या कर सकता है?"

डा० जानसन ने पूछा, कि किस्सा क्या है? उसे हुआ क्या है? उस व्यक्ति को चाहिये था कि वह अपनी शिकायत या कष्ट का कोई कारण बताता, पर उसने इस प्रकार अपना तर्क आरम्भ किया, "मनुष्य इस दुनिया में अधिक से अधिक सौ वर्ष तक जीता है और यह सौ वर्ष अनन्तता, नित्यता के सामने क्या महत्त्व रखते हैं। इस आयु का आधा समय तो सोते में व्यतीत हो जाता है। आप जानते हैं, हम प्रतिदिन सोते हैं और हमारे लड़कपन का समय एक लम्बी नींद ही तो है और हमारे बुढ़ापे का दौर बेबसी, असमर्थता और असहायता का होता है, इस दौर में हम कुछ कर नहीं पाते। फिर हमारे यौवन-काल का, बुरे विचारों और समस्त प्रकार के प्रलोभनों, इच्छाओं, अरमानों मे अपव्यय हो जाता है—व्यर्थता में बीत जाता है। हम बहुत खेलते हैं और बाकी जो समय बचता है, वह प्राकृतिक आवश्यकताओं (मल-त्याग, शौच आदि क्रियाओं) में और खाने-पीने आदि में चला जाता है। फिर भी जो समय बचता है, वह क्रोध, डाह, स्पर्धा, चिन्ता, परेशानी, दुःखों आदि की भेंट हो जाता है। ये भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्राकृतिक चीज़ें हैं। इसके बावजूद जो थोड़ा-सा समय बच जाता है, वह अपने बाल-बच्चों की देखभाल, लालन-पालन में, मित्र-सम्बन्धियों

की सेवा और ख़ातिरदारी में उड़ जाता है। बताइये मनुष्य इस संसार में क्या कर सकता है ?"

अपनी बात को और भी खींचते हुए उस व्यक्ति ने कहा, "जो लोग मर जाते हैं, उनके लिए हमें रोना भी पड़ता है और जो इस संसार में नवजात होते हैं, उनके जन्म पर हमें खुशियाँ भी मनानी पड़ती हैं। हमारा सारा समय इस ढंग से व्यर्थ चला जाता है। ऐसे में कोई मनुष्य किस तरह कोई ठोस अथवा महत्त्वपूर्ण एवं सच्चा काम कर सकता है? कोई व्यक्ति परमात्मा के ज्ञान या साक्षात्कार के लिए कैसे समय निकाल सकता है? हम नहीं निकाल सकते। इन चर्चों से दूर रहो, इन धार्मिक गुरुओं और उपदेशकों को पास मत फटकने दो। कह दो इन लोगों से कि इस संसार में लोगों के पास धर्म के लिए कोई समय नहीं है। उनके पास भगवान् के ज्ञान या प्रभु के पाने के लिए कोई वक्त नहीं है। हमारे लिए पहले ही करने को सीमा से अधिक काम है।"

डा० जानसन उसके शैतान की आंत के ऐसे लम्बे वक्तव्य पर मुसकराये नहीं, उसे झाड़ा या फटकारा भी नहीं, किन्तु उन्होंने केवल रोना ही आरंभ कर दिया और उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "मनुष्यों को आत्म-हत्या कर लेनी चाहिये, क्योंकि उनके पास ईश्वर के, धर्म के काम करने का समय नहीं है। मेरे भाई! आपकी इन शिकायतों के साथ मैं एक और शिकायत जोड़ देता हूँ। मेरी यह शिकायत बहुत गंभीर, बहुत खराब है।"

उस व्यक्ति ने डा० जानसन से वह शिकायत बताने को कहा। डा० जानसन ने चिल्लाना आरंभ कर दिया—झूठा चिल्लाना, और कहने लगे, "यह देखिये, यहाँ मेरे लिए कोई भूमि या पृथ्वी बाक़ी नहीं रही। यहाँ कोई भूमि या पृथ्वी बाक़ी नहीं बची, जो हमारे खाने के लिए पर्याप्त अन्न पैदा कर सके, मैं तबाह हो गया हूँ, मैं बरबाद हो गया हूँ।"

"अच्छा!" वह व्यक्ति बोल उठा, "डाक्टर साहिब! यह कैसे हो सकता है? मैं मानता हूँ कि आप बहुत ज्यादा खाते हैं, आप इतना खाते

हैं, इतना खाते हैं कि जो दस व्यक्तियों के खाने के बराबर होता है, फिर भी पृथ्वी पर इतनी काफ़ी भूमि मौजूद है, जो आपके पेट भरने के लिए पर्याप्त अन्न पैदा कर सकती है, आपके शरीर की आवश्यकता से अधिक गेहूं और सब्ज़ी उपजा सकती है। फिर आप क्यों शिकायत करते हैं ?"

डा० जानसन ने कहा, "यह देखिये, आपकी यह पृथ्वी क्या है ? यह पृथ्वी कुछ भी नहीं है, यह पृथ्वी खगोल-विद्या की गिनती में एक बिन्दु की सी हैसियत रखती है। जब हम नक्षत्रों, तारागण, और सूर्य के आकार, फ़ासला अथवा दूरी का हिसाब लगाते हैं, तो उसमें पृथ्वी को निल या शून्य अर्थात् सिफ़र के बराबर पाते हैं। फिर इस सिफ़र या पृथ्वी के दो-तिहाई भाग पर पानी फैला हुआ है, अब उसका शेष क्या रह जाता है ? चिह्न मात्र ! बहुत-सा भाग बंजर मरुस्थल ने ले रखा है और एक महत्त्वपूर्ण भाग हरियाली-शून्य पहाड़ियों और पत्थरों ने घेर रखा है, फिर एक अच्छे-ख़ासे भाग में झीलें, नदियाँ, बह रही हैं। पृथ्वी के बहुत बड़े भाग पर लन्दन जैसे महानगरों का मेला लगा है, सड़कों, रेलमार्गों और बाजारों की भरमार हो रही है, अब बताइये पृथ्वी पर मनुष्य के लिए कौन-सा स्थान बचा है ? हम फर्ज कर लेते हैं, फिर भी मनुष्य के लिए कुछ स्थान बच गया है, परन्तु इस ज़रा-सी बची हुई जगह पर कितने लोग हैं, जो अपने डेरे डालना चाहते हैं ? यहाँ असंख्य पक्षी हैं, बेहिसाब कीड़े-मकोड़े हैं, अनेक घोड़े, अनेक हाथी हैं—ये सभी पृथ्वी के शेष भाग पर रहना चाहते हैं। बहुत ही थोड़ी-सी जगह मनुष्य के लिए रह जाती है। संसार में कितने मनुष्य हैं ? ज़रा लन्दन ही को लीजिये, लाखों के लाखों लोग इसमें भरे पड़े हैं। इस विराट् जन-संख्या को देखिये, यह सारी जनसंख्या इस सिफ़र पृथ्वी के ज़रा से बचे हुए भाग की उपज पर अपना पेट भरना चाहती है। यह पृथ्वी मेरी संतुष्टि के लिए पर्याप्त भोजन कैसे पैदा कर सकती है ? मेरे तर्क ने मुझे अत्यन्त निराशा के किनारे पर ला खड़ा किया है, इस खेद के घटाटोप अँधेरे खड्डे में धकेल

दिया, कि मुझे मर जाना चाहिये क्योंकि मैं कहीं इतनी-सी भूमि भी नहीं पा सकता, जो मेरा पेट भरने के लिए अन्न उपजा सके।"

अब उस व्यक्ति ने कहा, "डाक्टर साहिब, आपकी दलील ठीक नहीं है, आपका तर्क ठीक मालूम होता है। परन्तु फिर भी—आपके तर्क के बावजूद—यह पृथ्वी आपको रख सकती है।"

और डा० जानसन बोले, "जनाब ! यदि मेरी यह शिकायत निराधार है, तो आपकी यह शिकायत भी कि आपको अपने आपको आध्यात्मिक भोजन जुटाने के लिए कोई समय नहीं मिलता, सरासर बेसिर-पैर की है। यदि मुझे भोजन-सामग्री जुटाने के लिए पर्याप्त भूमि मौजूद है तो आपकी आवश्यकता के लिए समय भी पर्याप्त रूप में मौजूद है, यह आपको आध्यात्मिक भोजन भी जुटा सकता है।"

नेकी के लिए, धार्मिक या आध्यात्मिक कार्मों के लिए समय नहीं मिलता, यह शिकायत सर्वथा निराधार है। यदि मनुष्य समय का उचित एवं उपयुक्त प्रयोग करना जानता है और उसका मन हो कुछ करने को, तो चाहे कैसी भी परिस्थितियाँ हों, समय निकाल ही सकता है।

अजेयता का रहस्य

हिन्दू-शास्त्रों में तीन व्यक्तियों की एक बहुत ही शानदार व प्रभावशाली कहानी का वर्णन किया गया है। वे व्यक्ति असुर कहलाते थे। वे तीनों असुर आश्चर्यजनक शक्तियों से भूषित थे। वे असाधारण योद्धा थे। कोई भी व्यक्ति उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता था। वे अद्‌भुत व्यक्ति थे। लोग मैदान में उतरे, उन तीनों से लड़े और तुरन्त मुँह की खाकर रह गये; शत्रुओं के दल आक्रमणकारी हुए, परन्तु पराजय ने उनकी बधिया बिठा दी। उनसे लड़ने वाले लोग हजारों की संख्या में आये। परन्तु उन्हें इन तीनों से हार खानी ही पड़ी। शत्रुओं ने बार-बार पराजित होने के पश्चात् एक महात्मा के चरणों में आकर प्रार्थना की कि इनको कोई ऐसा ढंग बताने की कृपा करें, जिससे उन तीनों असुरों को हराया जा सके।

महात्मा ने इनसे कहा कि उन असुरों की अजेयता के कारणों का पता लगाना चाहिये। आखिर वे अजेय क्योंकर हैं?

बहुत प्रयत्नों और कष्टों के बाद उनकी अजेयता का रहस्य खुला, यह कि वे अपने मन में यह विचार कभी उठने नहीं देते कि वे कर्ता हैं या भोगता है, अर्थात् बड़ी-से-बड़ी विजय प्राप्त करके भी खुशियाँ मनाने या हर्षोल्लास के समारोह रचाने नहीं बैठ जाते। जब जीत उनके चरण चूमती—जब विजय उनके माथे पर गौरव का तिलक करती—तो उनके मन पर कुछ भी असर नहीं होता। वे विजय का विचार तक भी मन में नहीं लाते। जब वे लड़ रहे होते हैं, तो यह ख़याल कि "मैं, इस शरीर के

रूप में, लड़ रहा हूँ" उनके पास फटकता तक नहीं और यह भाव कि "मैं लड़ रहा हूँ," उन्हें छू नहीं पाता। इस प्रकार के बहादुर योद्धा थे वे इस संसार में।

आप जानते हैं कि युद्ध में प्रत्येक योद्धा जब लड़ रहा होता है, जिस प्रकार लोग कहते हैं, "मैं पूर्णरूपेण या मूर्तिमान श्रवण शक्ति हूँ," उसी प्रकार उस समय योद्धा मूर्तिमान कर्म अर्थात् युद्ध-कर्म होता है। वहाँ इस विचार की गुंजाइश नहीं रहती कि "मैं कर रहा हूँ।" वहाँ शरीर कहने को एक यन्त्र होता है अर्थात् शरीर यंत्रवत् होता है। वह मूर्तिमान कर्म है, इस अवस्था में उसका सिर और पाँव ईश्वरत्व में—भगवान् में—डूबे होते हैं। इसलिए ऐसे व्यक्ति जब भी युद्ध लड़े मूर्तिमान कर्म—युद्ध कर्म—बन गए। उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस विचार को पास नहीं आने दिया कि "मैं कर रहा हूँ—या लड़ रहा हूँ।" जिस प्रकार एक यंत्र या मशीन काम करती है, ठीक उसी प्रकार उनके शरीरों ने किया—ईश्वर की मशीन या यन्त्र के रूप में। उनके शरीरों ने प्रेम की मशीन के रूप में युद्ध किया। यही रहस्य था उन तीन असुरों की सफलता का—विजय का। कोई भी व्यक्ति उन्हें जीत न सका।

अब उनकी अजेयता का रहस्य मालूम हो गया था, महात्मा ने उन असुरों के शत्रुओं को असुरों पर विजय पाने का ढंग बता दिया। महात्मा ने कहा कि वे लोग असुरों के साथ युद्ध छेड़ दें और लड़ते-लड़ते हठात् मैदान छोड़कर भाग जायें। इसके बाद फिर जाकर असुरों को युद्ध के लिए ललकारें और जब वे इन पर आक्रमण आरंभ करें, तो वे फिर मैदान छोड़कर भाग जायें, यह जताने के लिए कि असुर जीत गये हैं। बस इस प्रकार असुरों के साथ युद्ध छेड़ने और बाद को मैदान से भाग जाने का यह खेल जारी रखें।

असुरों के शत्रुओं ने ठीक यही युद्ध-नीति अपनायी। वे असुरों के पास जाते, उन्हें युद्ध के लिए ललकारते। असुर मैदान में उतरते, तो वे भाग खड़े होते। इन लोगों ने असुरों के साथ यह तमाशा बार-बार

असुरों को युद्ध के लिए चुनौती देते और युद्ध के या आक्रमण के आरंभ होते न होते ये पीठ दिखाकर भाग जाते। इस प्रकार उन असुरों के शत्रुओं ने और भी कई बार हार खायी।

इसका प्रभाव यह हुआ कि धीरे-धीरे वे तीनों अजेय असुर योद्धा अपनी वास्तविक स्थिति से विमुख हो गये, यूँ कहिये कि इस ढंग से उन्हें उनकी सच्ची स्थिति से बाहर निकाल लिया गया—उन्हें उनकी प्रकृत अजेयता से बाहर धकेल दिया गया और उन्हें नीचे उतार कर उनके शरीरों में बिठा दिया गया। उनमें यह विश्वास पैदा कर दिया गया कि वे विजेता हैं। उन्हे यह विश्वास करने पर विवश कर दिया गया कि वे महान् हैं और कि विजेता हैं। निरन्तर प्राप्त हुई विजयों ने उनके मन में यह भाव भर दिया कि वे विजेता हैं, वे अजेय हैं। सरांश यह कि उन तीनों अजेय असुरो को उनकी ऊँची स्थिति से नीचे उतार कर शरीर के पिंजरे में बन्द कर दिया गया, उन तीनों को उनकी देह की चारदीवारी में बन्दी बना दिया गया। यह विचार कि "मैं कर रहा हूँ," यह भाव कि "मैं महान् हूँ," उन तीनों पर हावी हो गया—इस भाव ने उन्हें पकड़ कर क़ैद में डाल दिया। अन्त मे जहाँ भगवान् का निवास था—जहाँ उनके रोम-रोम मे सर्वशक्तिमान प्रभु बसा हुआ था, वहाँ उसके स्थान पर एक अल्पशक्ति अभिमान—अहंकार—ने डेरा जमा लिया। अब उन पर विजय पाना कोई कठिन कार्य नही रह गया था। अब उन्हे पकड़ लेना तथा बन्दी बना लेना बच्चों का-सा खेल बन गया था।

अब उन असुरों पर उनके शत्रुओं ने आक्रमण किया और उन्हें शीघ्र ही पराजित कर दिया गया और तुरन्त पकड़ लिया गया।

जब तक आप इस तरह से काम करते रहते हैं कि आपका शरीर भगवान् के हाथ में एक यन्त्र है—एक मशीन है, आपका व्यक्तित्व ईश्वरत्व में डूबा रहता है—जब तक आप ऐसी स्थिति में रहते हैं, आप उन तीनों असुरों की भाँति अजेय हैं, आप उन असुरों के समान इस विचार से ऊपर उठ जाते हैं, "मैं भोग रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ।" आप अजेय हैं,

परन्तु जब लोग आपके पास आते हैं और आपकी प्रशंसा के पुल बांधने लग जाते हैं, आपको आकाश पर चढ़ा देते हैं, आपकी खुशामद करते हैं, सब पहलुओं से आपको मक्खन लगाते हैं, आपकी हाँ में हाँ मिलाते हैं, आपके मन में यह विश्वास पैदा कर देते हैं कि आप विजेता हैं, आप बहादुर हैं, आपके प्रभुत्व की तूती बोल रही है, और अन्य सभी लोग पराजित हैं, आपके प्रतिद्वन्द्वी आपके विरुद्ध हैं। आप इन्ही तीनों असुरों के समान हैं। यह विचार कि "मैं कर रहा हूँ" और कि "मुझे कर्म का उपभोग करना चाहिये," "मैं भोक्ता हूँ,"—यही विचार आपको बन्दी बना लेता है, आपको नीचे उतार कर शरीर के पिंजरे में बन्द कर देता है। आप ख़त्म हो जाते हैं, निर्जीव हो जाते हैं और शक्ति नष्ट हो जाती है। पिंजरे से बाहर निकल आइये और देखिये आप शक्ति-सम्पन्न हैं। पिंजरे के भीतर फिर चले आइये, आप देखेंगे कि आप ख़त्म हो गये हैं।

० अपने आपको ईश्वर में—परम सत्य में—खो दीजिये, देखिये आप परम शक्तिशाली हैं, अजेय हैं और अपने आपको ईश्वर से बाहर खींच लीजिये, और देखिये आपका कहीं ठिकाना नहीं, कदम-कदम पर हार की मार पड़ती है, विपत्तियाँ, दुःख दबोच लेते हैं और आप तबाह होकर रह जाते हैं।

आँखें, जो निकाल दी गयीं!

एक था हिन्दू साधु—

एक बार वह निराहार अवस्था में गलियों में से गुजर रहा था भारत में सन्त और महात्मा जब भूखे होते हैं तभी पहाड़ों से उतर कर शहर की गलियों में आते हैं, और भिक्षा करते हैं। वे बहुत ही विशेष तथा दुर्लभ अवसरों पर नगर-कूचों में आया करते हैं। अन्यथा बस्तियों से बाहर कहीं या वनों में रहते हैं और अपना सारा समय प्रभु की भक्ति एवं चिंतन में व्यतीत करते हैं।

उस निराहार साधु को भोजन खिलाया गया। एक महिला उसके लिए बहुत ही स्वादिष्ट खाना लाई। उसने उस रोटी को अपने रूमाल में ले लिया और उस घर से चलता बना। यही भारत के साधुओं का नियम है। साधु ने उस रोटी को पानी में भिगोकर खा लिया। दूसरे दिन वह फिर गलियों में आया, लगभग उसी समय जिस समय वह पहले दिन आया था। फिर वही ललना उसके पास आयी और उसे बहुत ही पौष्टिक भोजन दे गयी। वह वापस चला गया। तीसरे दिन जब वह साधु आया, तो वही लड़की उसके लिए बहुत अच्छी वस्तु खाने को लायी। जब वह स्वादिष्ट वस्तु साधु को दे रही थी तो उससे बोली, "मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रही थी। मेरी आँखें आपके लिए द्वार पर देखते-देखते दुखने लग गयीं। आपकी आँखों ने मेरे मन को मोह लिया है।"

ये शब्द सुनकर साधु चुपचाप भोजन लेकर वहाँ से चला गया और एक अन्य द्वार पर जा खड़ा हुआ। वहाँ से उसे बहुत अच्छा भोजन मिला।

यह भोजन लेकर साधु वनों में चला गया और इसे खा लिया। परन्तु वह बढ़िया भोजन उठाकर नदी में फेंक दिया। जो पहली ललना ने दिया था और उसके प्रति प्रेम-भाव प्रकट किया था।

अगले दिन उसने लोहे की अत्यन्त गर्म-गर्म सलाइयों की सहायता से अपनी दोनों आँखें बाहर निकाल लीं और उन्हें रूमाल में बाँध लिया। इसके पश्चात् एक छड़ी हाथ में ली और बड़ी कठिनाई से चलते-चलते उन्हीं गलियों में पहुँच गया। अनुमान के द्वारा उसी ललना के घर के द्वार पर जा खड़ा हुआ, जिसने उसके प्रति प्रेम व्यक्त किया था। वहाँ वही ललना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। बड़े उत्सुक भाव से साधु की आँखें भूमि पर गड़ी हुई थीं। ललना ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया था कि साधु ने अपनी आँखें फोड़ रखी हैं। वह जब बहुत ही स्वादु पौष्टिक भोजन साधु के लिए लायी, तो साधु अपनी आँखों की दोनों पुतलियाँ भेंट करते हुए बोला, "माँ! माँ!! इन्हें ले लो, माँ, क्योंकि इन आँखों ने तुम्हें मोहित कर लिया था और तुम्हें कष्ट दिया था, परेशान किया था। तुम्हें पूरा अधिकार है कि तुम इन आँखों को ले लो। तुम इन आँखों को चाहती थी ना तो इन्हें अपने पास रख लो, इनसे प्रेम करो, इनसे आनन्द का उपभोग करो। इन नयन-पुतलियों से जो चाहो सो करो, परन्तु भगवान् के लिए मुझ पर कृपा करके अब मेरी उन्नति के मार्ग में कोई बाधा न डालो। मुझे सत्य के मार्ग से भटक जाने न दो।"

प्यारे भाइयो! यदि तुम्हारी आँखें तुम्हारे उन्नति के मार्ग में तुम्हें गिरा देने वाली या रोक देने वाली बाधा बन गयी हैं, तो उन्हें निकाल कर फेंक दो। यह अच्छा है कि तुम्हारा शरीर ऐसी आँखों—ऐसी रोशनी—से वंचित ही रहे, बजाय इसके कि तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही अन्धकार में विनष्ट हो जाय। यही एक रास्ता है।

यदि तुम्हारी आँखें सत्य के पहचानने के मार्ग में बाधा बनती हैं, तो इन्हें निकाल फेंको। यदि तुम्हारे कान तुम्हारे धर्म से तुम्हें पीछे रखते हैं, तो काट कर रख दो। यदि तुम्हारी बीवी, धर्म, सम्पत्ति, या अन्य कोई

बड़ी-से-बड़ी अमूल्य वस्तु तुम्हारे रास्ते में बाधा बनती है, तो तुरन्त उसका परित्याग कर दो। क्या तुम सत्य को उसी मनोवेग से प्रेम कर सकते हो, जिससे तुम अपनी पत्नी, अपने सम्बन्धियों से करते हो? क्या तुम ईश्वर से और आत्मा या ज्ञान से उसी चाव, उसी तड़प से प्यार कर सकते हो, जिससे अपनी पत्नी के साथ करते हो? क्या तुम ईश्वर से उससे आधा प्रेम कर सकते हो, जितना तुम अपनी भार्या के प्रति प्रकट करते हो? कर सको, तो तुम्हें सत्य का ज्ञान––सत्य का साक्षात्कार उसी समय हो जायगा।

● सत्य के मार्ग में––आत्म-ज्ञान की मंजिल में कितनी भी प्रिय वस्तु, कितना भी अमूल्य पदार्थ तुम्हारा बाधक बनता है, उसे हटा ही देना चाहिये।

जब सिकन्दर के हाथ से तलवार गिर पड़ी

संसार के अन्य देशों पर अधिकार करने के पश्चात् सिकन्दर महान् भारत की ओर बढ़ा। वह भारत के उन विचित्र व्यक्तियों को देखना चाहता था, जिनके विषय में बहुत कुछ सुन चुका था। उसे सिन्धु नदी के तट पर एक साधु के पास ले जाया गया। साधु महात्मा किनारे की रेत पर लेटे हुए थे। वे नंगे सिर, नंगे पाँव थे। शरीर पर भी कोई वस्त्र धारण नहीं कर रखा था। वे नहीं जानते थे कि उनके लिए कल कहाँ से भोजन आयेगा—बस मजे से लेटे हुए थे और धूप ताप रहे थे।

सिकन्दर महान् अपने भौतिक ठाठ-बाट से लदा-फंदा उन महात्मा के पास आकर खड़ा हो गया। उसके सिर का बहुमूल्य रत्न-जड़ित ताज धूप में चमकता-दमकता आँखों को चकाचौंध कर रहा था। यह ताज उसे ईरान से प्राप्त हुआ था। उसके लम्बे शाही चोग़े पर मण्डित ज़री-मोती सितारों की भाँति झिलमिला रहे थे। इस प्रकार की अपूर्व शान-शौकत से सम्पन्न उस संसार-विजेता के पास ये महात्मा नितान्त नंग-धड़ंग अवस्था में भूमि पर लेटे हुए थे। कितना विरोधाभास था यह ! एक ओर सिकन्दर महान् का शरीर समस्त संसार के वैभव का प्रतिनिधित्व कर रहा था और दूसरी ओर बाह्य निर्धनता व ग़रीबी का प्रतिनिधित्व उन साधु महात्मा द्वारा हो रहा था ! परन्तु आपको तो उन दोनों के वास्तविक अन्तरात्माओं की ग़रीबी और अमीरी जानने के लिए केवल उनके चेहरों पर नज़र डालनी होगी।

एक ये साधु महात्मा हैं कि जिनका आत्मा अमीर है, एक यह साधु हैं कि जिन्होंने अपने आत्मा की अमीरी, सर्व-सम्पन्नता और महिमा को जान-पहचान लिया है और एक वह संसार-विजेता सिकन्दर महान् है, जो महात्मा के पास खड़ा अपने अन्दर की ग़रीबी और दरिद्रता को छिपाना चाहता है। ज़रा महात्मा के भव्य मुखमण्डल की तरफ देखिये—कितना ओजस्वी है ! कितना तेजपूर्ण है !! और देखिये क्या आनन्द बरस रहा है इससे ! क्या अलौकिक प्रसन्नता—क्या दैवी तुष्टि छलक

रही है इस विशाल वदन से ! ! सिकन्दर महान् महात्मा के इस भव्य वदन को देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। उसका मन महात्मा के प्रति प्रेम-विमोहित हो गया और उसने महात्मा से निवेदन किया कि उसके साथ यूनान चलें।

महात्मा हँस दिये और उनका उत्तर था, 'सारा संसार मेरे भीतर है—मेरे अन्दर समाया हुआ है। यह संसार मुझे अपने भीतर नहीं ले सकता—मैं संसार के अन्दर समा नहीं सकता। मैं विश्व में सीमित या क़ैद नहीं किया जा सकता। यूनान और रोम मेरे भीतर मौजूद हैं। ये सूर्य और सितारे—ये ग्रह और नक्षत्र मेरे अन्दर उदय और अस्त होते हैं।"

सिकन्दर महान् ने कभी ऐसी बातें सुनी नहीं थी—उसके सामने ऐसी बातें करने का साहस कभी किसी को हुआ नहीं था। वह विस्मय-मूर्ति बन के रह गया। आख़िर बोला, "मैं आपको धन-दौलत से माला-माल कर दूँगा। सांसारिक सुख, भोग-विलास जुटाने में कोई कसर उठा नहीं रखूँगा। वे समस्त प्रकार के पदार्थ, जो मनुष्य के मन को मुग्ध-विमोहित कर देते हैं—जिनके लिए इन्सान सदा लालायित व तड़पता रहता है, सदा आपके क़दमों में लोटते रहेंगे। बस, आप कृपापूर्वक मेरे साथ यूनान चलिये—एक मात्र यही मेरा अनुरोध है।"

महात्मा उसकी बात सुनकर हँसे और हँसते हुए चले गये। बोले, "इस विश्व में कोई भी ऐसा रत्न, जवाहर, माणिक-मोती नहीं—कोई भी ऐसा सूर्य-सितारा नहीं, जो मेरी ज्योति के बिना चमकता है। मेरा ही प्रकाश इन सब पदार्थों को प्रकाशशील कर रहा है। स्वर्ग के समस्त ज्योतिर्मय शरीर—सकल देदीप्यमान पिण्ड—मेरे ही कारण महीयान् व श्रीयुक्त हैं। समस्त पदार्थों की आकर्षक प्रकृति, समस्त अभीष्ट वस्तुओं की मनोहरता मेरी ही कृपा से है। यह बात मेरे गौरव को कम करने वाली होगी—यह चीज़ मेरे लिए अपमानजनक होगी—कि इन पदार्थों को पहले तो मैं महिमा प्रदान करूँ और बाद में इन्हीं के पास इन्हें प्राप्त करने की इच्छा से जाऊँ—द्वार-द्वार पर जाकर इन्हीं सांसारिक ऐश्वर्यों

की भिक्षा माँगूँ, शारीरिक और पाशविक कामनाओं के दरवाज़े जाकर खटखटाऊँ पशु-सुलभ हर्ष और उल्लास हासिल करने के लिए। यह मेरी प्रतिष्ठा के स्तर से बहुत नीचे की बात है। मैं इस निचले स्तर पर कभी कदापि नहीं उतरूँगा। मैं इनके द्वारों पर भिक्षा करने कभी नहीं जाऊँगा।"

ये बातें सुनकर सिकन्दर महान् को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने मियान से तलवार खींच ली और एक ही वार से महात्मा का सिर अलग कर देना चाहता था।

महात्मा फिर हँसे—मुक्त हृदय से हँसे और बोले, "अरे सिकन्दर! तुमने अपने जीवन में इससे बड़ा झूठ नहीं बोला—इतना घृणित मिथ्या-प्रलाप नहीं किया। मुझे क़त्ल करो—कर दो क़लम मेरा सिर—हाँ, हाँ, करो, जल्दी करो! कहाँ है वह तलवार जो मेरा सिर काट सकती है? कहाँ है वह शस्त्र, जो मुझे घायल कर सकता है? कहाँ है वह विपत्ति, जो मेरी प्रसन्नता को समाप्त कर सकती है? कहाँ है वह दुःख शोक, जो मेरे आनन्द-राज्य में पग रखने का साहस कर सकता है? यह अजर, अमर, कल, आज और सदा-सर्वदा रहने वाला, शुद्ध-शाश्वतों का शुद्ध-शाश्वत, विश्व ब्रह्माण्ड का स्वामी—वह मैं हूँ—वही मैं हूँ। यहाँ तक कि तुम्हारी भुजाओं में मैं ही बल हूँ, जो तुम्हें गतिशील करता है। मैं ही वह शक्ति हूँ, जो तुम्हारे अंग-प्रत्यंग को संचालित करती है।"

सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट कर भूमि पर आ गिरी और वह अवाक्-निश्चल खड़े का खड़ा रह गया।

बाह्य हानि सहने की शक्ति, बाह्य-त्याग की क्षमता आन्तरिक पूर्णता आन्तरिक प्रभुता या राजस्व के बिना प्राप्त नहीं होती—इसके अतिरिक्त और कोई उपाय और कोई मार्ग नहीं।

☐ संसार में सच्चा त्यागी ही निर्भीक और विपत्ति-मुक्त हो सकता है।

मानव-प्रेम-ईश्वर-भक्ति

एक शेख़ साहब थे। उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक देवदूत (फ़रिश्ता) अपनी एक पुस्तक में लोगों के नाम लिख रहे थे। शेख़ साहिब ने पूछा, "आप यह क्या कर रहे हैं, जनाब ?"

फ़रिश्ता ने उत्तर दिया, "मैं उन लोगों के नाम लिख रहा हूं, जो खुदा के निकटतम, श्रेष्ठतम, और सबसे बड़े भक्त हैं।"

सुनकर शेख़ साहिब अपना सिर ऊँचा न उठा सके, निराशा-भरे स्वर में बोले, "मैं चाहता था कि मैं भी अन्य ईश्वर-भक्तों की भांति एक भक्त होता। मैंने कभी दुआ या प्रार्थना नहीं की। मैंने कभी व्रत (रोजा) नहीं रखा, मैं कभी मस्जिद में नहीं गया, कभी नमाज नहीं पढ़ी। मुझ पर पाबन्दी लगा दी जायगी। मैं जन्नत में प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकूंगा।"

फ़रिश्ता ने कहा, "मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।"

शेख़ साहिब ने एक और प्रश्न पूछा, "क्या आप कभी ऐसे व्यक्तियों के नाम भी लिखेंगे, जो मानस से और समग्र संसार से तो प्यार करते हैं पर खुदा से नहीं ?"

शेख़ ने यह भी कहा, "मेरा नाम मानव-भक्त के रूप में लिख लीजिये।"

फ़रिश्ता अन्तर्धान हो गया। शेख़ साहिब ने एक दूसरा स्वप्न देखा और इस दूसरे स्वप्न-लोक में फ़रिश्ता वही रजिस्टर लेकर प्रकट हुआ। जब उसने रजिस्टर के सब पृष्ठों को उलट कर देखा और उसने सारे रजिस्टर को पुनः पढ़ डाला, तो शेख़ ने पूछा कि वे क्या कर रहे हैं? फ़रिश्ता ने उत्तर दिया कि उसने इस रजिस्टर को फिर पढ़ डाला था।

उसने ईश्वर-भक्तों के नाम उनकी भक्ति की उच्चता के अनुसार क्रमपूर्वक लिख लिये थे।

शेख़ साहिब ने फ़रिश्ता से उस रजिस्टर के देखने के लिए प्रार्थना की, जो मान ली गयी। रजिस्टर खोलते ही शेख़ साहिब आश्चर्य से स्तम्भित रह गये। शेख़ साहिब ने, जिन्होंने अपना नाम मानव-भक्त के रूप में रजिस्टर में लिखने को कहा था, देखा कि उनका नाम उस सूची में, जिसमें ईश्वर-भक्तों के नाम लिखे गये थे, सबसे ऊपर लिखा है।

क्या यह आश्चर्य की बात नहीं ? यह सत्य है।

• ईश्वर की सच्ची भक्ति केवल ईश्वर के नाम की रट लगाये रखने या मन्दिर, मस्जिद में आकर नमाज पढ़ने या पूजा करने में नहीं है, प्रत्युत मानव-मात्र की सेवा में, मानव-मात्र के कष्टों के दूर करने में प्रयत्नशील रहने में है या यूँ कहिये कि प्रत्येक मानव में ईश्वर ही के दर्शन करना है।

झूठ सच बन गया!

भारत में एक मुसलमान शाइर था।

वह अच्छा आदमी था, परन्तु अच्छा होने से कहीं अधिक चतुर और चालाक था। बड़ा हाजिर-जवाब एवं सजग-मति था। वह एक भारतीय शाहज़ादा का दरबारी था, साधारण दरबारी नहीं था, शाहज़ादा की नाक का बाल बना बैठा था। शाहज़ादा उससे बहुत प्रभावित था।

एक दिन बहुत रात गयी तक शाहज़ादा ने उस शाइर को अपने साथ रखा। शाइर अपनी सुन्दर एवं चटपटी शाइरी से शाहज़ादा का मनोरंजन करता रहा। उस शाइरी के माध्यम से अत्यन्त रोचक कहानियाँ सुनायीं, हास्य और विनोद से छलकती हुई नाना कविताओं का रसास्वादन कराया। शाहज़ादा शाइर की इस मनोरंजनपूर्ण संगीत में इतना खो गया कि खाना-सोना तक बिसर गया।

शाहज़ादा जब अपने अंतःपुर में पहुँचा, तो मलिका ने उससे इतनी देर से आने का कारण पूछा। शाहज़ादा ने कहा, "एक अत्यन्त आश्चर्य-जनक व्यक्ति आज की शाम हमारे पास था। क्या कहिये, उस जैसा अच्छा, शानदार, बुद्धिमान, मन बहलाने वाला और खुश-बाश व्यक्ति कहीं देखा नहीं गया।"

यह सुनकर मलिका ने बड़ी उत्सुकता से उस शाइर के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी बातें पूछीं। मलिका की असाधारण उत्सुकता और रुचि का अनुरोध देखकर शाहज़ादा ने शाइर की योग्यता और उपलब्धियों की प्रशंसा-चर्चा को इस क़दर लम्बा खींचा की रात बीतने का पता न चला

और जब यह चर्चा सम्पन्न हुई उस समय प्रभात का अरुणाभ रुपहला आलोक क्षितिज पर फैलना आरंभ हो गया था। अब मलिका की उत्सुकता चरमसीमा पर पहुँच चुकी थी। उसने शाहज़ादा से अनुरोध किया कि उस रसिक शाइर को किसी दिन उसके सामने उपस्थित करें।

मलिका का कहना ही था कि दूसरे दिन वह शाइर मलिका के सामने उपस्थित था। उस शाइर को शाहज़ादा अपने साथ हरम (अन्तःपुर) में लाया। वहाँ शाइर ने अपनी अत्यन्त रोचक कविताएँ और कहानियाँ सुनाईं। मलिका तथा अन्तःपुर की समस्त ललनाएँ बहुत ही प्रसन्न हुईं। उस समय शाइर ने बताया कि वह अन्धा है। उसको आँखों की कोई बीमारी लग गयी थी, परन्तु वह जन्म से अन्धा नहीं था।

अब शाइर के इस शरारत-भरे बहाने के कारण उसके लिए अन्तःपुर में शाही परिवार की महिलाओं के निजी कमरों में निवास करने की आज्ञा का बहुत अच्छा मैदान पैदा हो गया। शाइर अन्धा है, इसलिए शाही घराने की ललनाओं को उस पर संदेह या अविश्वास करने की गुंजाइश नहीं थी। उसे अन्धा समझ कर अन्तःपुर की महिलाएँ स्वतन्त्रतापूर्वक इधर-उधर जा सकेंगी और आपस में बातचीत कर सकेंगी। उन्हें एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने के लिए पर्दा नहीं करना पड़ेगा अथवा निकाब नहीं ओढ़नी पड़ेगी। उस शाइर की मौजूदगी में भी वे खुले-मुँह इधर-उधर आ जा सकेंगी। इन बातों को सामने रख कर और यह विश्वास करके कि शाइर सचमुच अन्धा है, शाहज़ादे ने शाइर को महिलाओं के अन्तःपुर में रहने की अनुमति दे दी। परन्तु सच्चाई कभी छिपाई नहीं जा सकती। किसी-न-किसी दिन वह सामने आ ही जाती है।

एक दिन उस शाइर ने एक महिला दासी को कोई वस्तु ला देने को कहा।

वह शाइर सोचता था कि उसे जब बादशाह के महल में बहुत बड़ा सम्मान-युक्त स्थान प्राप्त है, तो यह बात उसकी शान के अनुकूल नहीं

बैठती थी कि यह अपने आसन को छोड़कर स्वयं कुर्सी उठा कर वहाँ रखे जहाँ उसे चाहिये। इसलिए उसने एक महिला-दासी को आदेश दिया कि वह उसके लिए कुर्सी लाकर रख दे।

उस दासी ने बड़े कठोर शब्दों में दो टूक उत्तर दिया कि वह बहुत व्यस्त है। उसे फुर्सत नहीं। वह इस काम के लिए समय नहीं निकाल सकती।

इसके पश्चात् वहाँ एक अन्य नौकरानी आयी। शाइर ने उसे अपने पास पुकार कर कहा कि कुर्सी लाकर रखे। परन्तु नौकरानी बोली, "इस कमरे में कोई कुर्सी नहीं।"

शाइर ने कहा, "पानी का बर्तन ला दो।"

दासी बोली, "इस कमरे में कोई बर्तन-वर्तन नहीं है। मैं दूसरे कमरे में जाऊँगी और वहाँ से आपको ला दूँगी।"

"इसे ले जाओ। इस कमरे में एक बर्तन पड़ा तो है। क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता? यह पड़ा है देखो।"

अपना काम करवाने की घबराहट और परेशानी में शाइर अपने-आपको भूल गया। भूल गया कि उसने अन्धा होने का बहाना बना रखा है। इसे कहते हैं, 'जादू वह, जो सिर पर चढ़ कर बोले।' इसी प्रकार सच झूठे की फबतियाँ उड़ाता है और उसकी पोल खोलकर रख देता है। और यह प्रकृति का विधान है!

शाइर ने जब यह कहा, "बर्तन यहाँ पड़ा है, तुम्हें दिखाई नहीं देता क्या?" दासी उसका वह काम करने के स्थान पर सीधी मलिका के पास पहुँची और शाइर की पोल खोलती हुई बोली, "देखिए, वह शाइर अन्धा नहीं है। वह शरारती और दुष्ट व्यक्ति है। उसे तुरन्त महलों से बाहर निकाल देना चाहिए।"

शाइर को महलों से बाहर निकाल दिया गया, परन्तु उसे बाहर निकाले जाने के लगभग तीन दिन के बाद वह शाइर सचमुच ही अन्धा हो गया। यह क्यों हुआ? कैसे हुआ?

यह कर्म की गति है—यह कर्म का विधान है, जो इस बात का उत्तर देता है कि यह शाइर अपनी ही इच्छा—अपने ही संकल्प के द्वारा अन्धा हुआ। मनुष्य अपने भाग्य का आप स्वामी है। उस पर अन्धापन उसके अपने आपने ही डाल दिया, अन्य किसी व्यक्ति ने उसे अन्धा नहीं किया। मनुष्य की अपनी इच्छाएँ, अपनी कामनाएँ, अपनी ही लालसाएँ उसे अन्धा बना देती हैं। बाद में जब अन्धापन सचमुच आता है तो फिर रोने बैठ जाता है, चिल्लाने लगता है। वह अपने दाँत पीसने लगता है, अपने होंठ काटने लगता और छाती पीटता है।

• प्रत्येक व्यक्ति कामनाओं का फल भोगता है। यह कर्म का विधान है।

बाधाएँ शक्ति का उद्गम !

एक था आदमी बहुत ही अच्छा, अत्यन्त शरीफ। उसने एक नौकर रख रखा था। बेहद शरारती, बहुत ही दुष्ट। यह नौकर जो काम करता ग़लत तरीके से करता। हर बात में उलटे ढंग का प्रयोग करता। अपने मालिक के आदेश का पालन अनोखे निराले भाव से करता। सच पूछिये, तो इसके काम करने की रीति कुछ ऐसी विचित्र होती थी कि देखकर धीर से धीर व्यक्ति भी आपे से बाहर हुए बिना नहीं रह सकता था। परन्तु वह विश्वसनीय साधु-स्वभाव मालिक इस नौकर से कभी खिन्न नहीं होता था, कभी झुँझलाता नहीं था, कभी क्रोधावेश में नहीं आता था, बल्कि इससे बड़ा प्यारा, बड़ा मनोहर व्यवहार करता था।

एक बार एक अतिथि ने इस नौकर के विरुद्ध आपत्ति उठायी और शिकायत की। अतिथि इस नौकर के व्यवहार तथा तौर-तरीक़े से बहुत ही अप्रसन्न और बौखला उठा था। इसने मालिक से कहा कि वह इस नौकर को हटा दे। मालिक बोला, "आपकी सलाह तो बहुत अच्छी है और यह सलाह आपने बहुत ही अच्छी नीयत से दी है। मैं जानता हूँ कि आप मेरी भलाई चाहते हैं; मैं जानता हूँ कि आप मेरे काम-काज की उन्नति चाहते हैं और यही कारण है कि आप मुझे यह सलाह देते हैं, परन्तु मैं बेहतर जानता हूँ—मुझे अच्छी तरह मालूम है कि मेरा काम बिगाड़ा जा रहा है, मैं जानता हूँ कि मेरे काम-काज को हानि पहुँचती है। परन्तु मैं इस नौकर को केवल इसी आधार पर या इस वास्तव स्थिति के कारण रखे हुए हूँ कि यह बहुत अविश्वस्त है। यह इसका बुरा व्यवहार और

इसका दुष्टतापूर्ण स्वभाव ही है, जिसके कारण यह मुझे बहुत प्यारा लगता है। मैं इसे बहुत प्यार करता हूँ, क्योंकि यह एक पापी, एक दुष्ट और अविश्वस्त नौकर है।"

यह बहुत ही अजीब-व-ग़रीब विचार-युक्त उत्तर था। सुनकर अतिथि आश्चर्य से अवाक् रह गया।

मालिक ने बात को जारी रखते हुए कहा, "यह नौकर ही संसार में एकमात्र ऐसा व्यक्ति मेरे सम्पर्क में आया है, जो मेरी आज्ञा नहीं मानता। यही एक व्यक्ति है, जो ऐसी बातें—ऐसे काम करता है, जो मेरे लिए अप्रशंसनीय, अपमानजनक तथा हानिकर हैं। अन्य सब लोग, जो मेरे सम्पर्क में आते हैं या जिनसे मेरा वास्ता पड़ता है, इतने शरीफ़, इतने नेक, इतने प्यारे, इतने अच्छे हैं कि वे मेरा विरोध करने, मुझे हानि पहुँचाने का साहस नहीं करते, इसलिए मेरा यह नौकर साधारण व्यक्तियों की गिनती में नहीं आता। यह मेरे आध्यात्मिक अपने आप या आत्मा के लिए डम्बलों की एक किस्म है, एक विशेष प्रशिक्षण, एक स्पेशल ट्रेनिंग है। ठीक जिस प्रकार बहुत-से लोग अपनी शारीरिक शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से अपने अवयवों या पुट्ठों के व्यायाम के लिए डम्बलों, पुलियों और भारी बोझों (वेटों) का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार यह नौकर एक प्रकार का वेट या डम्बल है, जिसके द्वारा मेरे आध्यात्मिक शरीर की शक्ति बढ़ती है, उसे सुदृढ़-सबल बनाता है। इस नौकर के माध्यम से मैं शक्ति प्राप्त करता हूँ। मैं इस नौकर के साथ एक प्रकार की कुश्ती करने पर विवश हो जाता हूँ, जिसके परिणाम में मुझे बल मिलता है।"

यदि आप समझते हैं कि आपके पारिवारिक सम्बन्ध या संसार की अन्य अप्रिय बातें आपके मार्ग में एक बाधा, एक गिराने वाली रुकावट हैं, तो आपको झुँझलाने झल्लाने या घबरा उठने की आवश्यकता नहीं। आप उक्त वफ़ादार, विश्वासपात्र मालिक के उदाहरण का अनुकरण कीजिये; कठिनाइयों, मतभेदों, विरोधों को बल और शक्ति का अतिरिक्त स्रोत या उद्गम बना लीजिये!

▪ रुकावटों, बाधाओं, यहाँ तक कि विपत्तियों का उपयुक्त प्रयोग, इन्हें शक्ति व बल के स्रोत में बदल सकता है। एक शाइर ने क्या खूब कहा है—

"अजब नहीं कि यही बिजलियाँ हवादिस[1] की,
हमारे तोसनि-हिम्मत[2] को ताज़ियाना[3] करें।"

अर्थात् यह बात विचित्र नहीं कि विपत्तियों की यही बिजलियाँ हमारे हिम्मत के घोड़े को चाबुक लगाएँ—हमारी हिम्मत को बढ़ा दें।

. विपत्तियाँ 2. हिम्मत का घोड़ा 3. चाबुक लगाएँ

तेली और तोता

भारत में एक तेली था—तेल बेचने वाला।

उसने अपने घर में एक तोता पाल रखा था। एक दिन वह तेली अपनी दुकान छोड़कर कहीं चला गया। उसका नौकर भी किसी अन्य स्थान पर संदेश पहुँचाने चला गया। एक तोता ही था दुकान में। तेली की अनुपस्थिति में एक बड़ा बिल्ला आ धमका। इस बिल्ले को देखकर तोता बहुत डरा। वह था पिंजरे में। वह इतना भयभीत हुआ कि पिंजरे में फड़फड़ाने और उछलने लगा कभी इधर कभी उधर। फलस्वरूप वह पिंजरा, जो दीवार के साथ लटक रहा था, धड़ाम से नीचे क़ीमती तेल से भरे हुए बर्तन पर आ गिरा। बर्तन था शीशे का, चकनाचूर हो गया और बहुमूल्य तेल ज़मीन पर बह गया।

कुछ समय के पश्चात् तेली आ गया और देखा कि बहुत क़ीमती तेल का बर्तन टूटा पड़ा है। इस हानि के मारे तेली अपने क्रोध पर काबू न रख सका। अब तोते की शामत आ गयी, क्योंकि तेली ने सोचा कि यह सारा गुल तोते ही ने खिलाया है। उसने सोचा कि तोते ही ने शरारत करके पिंजरे को नीचे तेल के बर्तन पर गिरा दिया था तथा उसका बेड़ा ग़र्क़ करके रख दिया था—कम से कम पचास रुपये की हानि का जूता उसके सिर पड़ गया था। वह क्रोध से पागल हो उठा। उसने पिंजरे का दरवाज़ा खोला और जोश में तोते के सिर का एक-एक बाल नोच डाला। तोते के सिर से रक्त बहने लगा। तोते को गंजा कर दिया गया, उसके सिर पर कलगी नाम की कोई चीज़ न रही। तोते ने दो सप्ताह तक ज़बान बन्द

रखी और अपने मालिक का मनोरंजन किया।

तोते के मालिक को अपने किये पर बहुत ही दुःख हुआ। दो सप्ताह के बाद एक ग्राहक तेली की दुकान पर आया। ग्राहक उस समय नंगे सिर था और यह ग्राहक भी गंजा था। देखकर तोता दिल खोलकर हँसा, खूब हँसा। वह बहुत खुश था अपना एक और साथी देखकर।

तोते के मालिक ने तोते से पूछा कि उसकी खुशी का क्या कारण है? वह क्या बात है, जिसने उसे खुशी से भर दिया है?

तोते ने कहा, "आहा, मैं परमात्मा का बहुत ही कृतज्ञ हूँ कि मैं ही केवल एक तेली का नौकर नहीं हूँ। यह व्यक्ति (ग्राहक) भी अवश्य एक तेली का नौकर है, अन्यथा यह अपने सिर के बालों से कैसे वंचित हो सकता था? वह गंजा क्योंकर होता, यदि यह किसी एक तेली का नौकर न रहा होता?"

■ संसार के प्रायः लोग इस तोते की भाँति ग़लत धारणा बना लेते हैं। चूँकि दुनिया में लोग आमतौर पर किसी न किसी स्वार्थ को सामने रखकर ही काम करते हैं, इससे वे यह धारणा बना लेते हैं कि परमात्मा ने भी यह संसार अपने किसी स्वार्थ ही के लिए बिना डाला है। जैसे तोता यह समझता था कि जो भी कोई गंजा है, वह किसी तेली का नौकर है। चूँकि उसके सिर के बाल एक तेली ने नोच डाले थे, इसलिए गंजे सिर वाले सभी किसी न किसी तेली के नौकर हैं। केवल तेली ही लोगों को गंजा बनाते हैं।

डरिये नहीं, सामना कीजिये !

हज़रत मूसा ने झाड़ी में से एक आवाज सुनी। उन्होंने पास ही एक फुंकारता हुआ साँप देखा। वे डर गये, इतने डरे कि होश गुम हो गये। वे थर-थर काँप उठे, उनकी छाती धप-धप धड़क रही थी, उनकी नस-नाड़ियों में सारा खून जम गया था। वे निश्चेष्ट होकर रह गए—नीम मुर्दे से!

उनके भीतर से एक आवाज चिल्ला उठी, "डरो नहीं, ओ मूसा! पकड लो इस साँप को—पकड़ लो इसे कसकर; साहस करो—दिलेर बनो और इसे पकड़ लो!"

मूसा अब भी काँप रहे थे और उनके भीतर से आवाज फिर चिल्ला उठी, "मूसा! आगे बढ़ो, पकड़ लो इस साँप को।"

मूसा ने इसे पकड़ लिया—और क्या देखते हैं कि यह एक अत्यन्त सुन्दर अत्यन्त भव्य छड़ी है, साँप नहीं।

यहाँ साँप से अभिप्राय सत्य है। आप जानते हैं कि हिन्दू शास्त्रों और अन्य प्राच्य जातियों के पुराणों के अनुसार सत्य या परम सच्चाई को साँप (शेष) से उपमा दी गयी है या प्रतीक माना गया है। साँप कुण्डली मार कर—शरीर का वृत्त के भीतर वृत्त बनाकर—बैठता है और अपनी पूँछ मुँह में दबा लेता है। अस्तु हम देखते हैं कि इस संसार में हम वृत्त के भीतर वृत्त पड़े हैं, प्रत्येक वस्तु अपने आपको दुहराती हैं—पुनरावृत्ति करती रहती है वृत्ताकार में घूमते-घूमते। यह एक विश्वव्यापी विधान है या सिद्धान्त है जो सारे विश्व में वर्तमान है।

साँप को पकड़ने का अर्थ यह है कि अपने आपको दलेरी से ईश्वरी

विधान के निर्माणकर्त्ता या विश्व के शासक के रूप में ढाल लीजिये। अपने आपको परम पुरुषार्थ के साथ उसकी स्थिति में आरूढ़ कर लीजिये और ईश्वर के साथ एकत्व का ज्ञान प्राप्त कीजिए।

▪ यह संसार उसके लिए एक भीषण अजगर है जो इससे डरता है परन्तु जो आत्म-ज्ञान की सहायता से बहादुरी के साथ इसका सामना करता है—मुकाबिला करता है—उसकी विश्वस्त भाव से सेवा करता है।

प्रेम अपने आप ही से करते हैं

याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियाँ थी, मैत्रेयी और कात्यायनी। वे बहुत धनाढ्य व्यक्ति थे। वे भारत के सबसे बड़े ऐश्वर्यशाली राजकुमार के गुरु थे। उन्होंने अपनी सम्पत्ति को अपनी दोनों पत्नियों में बाँट देना चाहा, क्योंकि वे स्वयं गृहस्थ छोड़कर वनों में डेरा डालने का इरादा कर बैठे थे। मैत्रेयी ने अपना हिस्सा लेने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि यह धन-सम्पत्ति अमरत्व प्रदान कर सकती, तो उसके पतिदेव इसे क्यों छोड़ देते ?

मैत्रेयी के मन में यह विचार उठा कि यह क्या बात है कि उसके प्रिय पतिदेव, जो भारत के सबसे बड़े धनवान् लोगों में से एक हैं, इस सारी सम्पत्ति का परित्याग करके एक अन्य प्रकार का जीवन-मार्ग ग्रहण कर रहे हैं ? निःसंदेह कोई भी व्यक्ति एक प्रकार के जीवन का परित्याग करके उस समय तक दूसरे प्रकार के जीवन को नहीं अपनाता, जब वह देखता है कि नये जीवन में पुराने जीवन से कहीं अधिक सुख, कहीं अधिक आनन्द है। इससे पता चलता है कि उसके पति के निकट यह जीवन जो वह ग्रहण करना चाहते हैं, उस जीवन से, जो अब तक व्यतीत कर रहे थे, अधिक सुन्दर, आनन्दमय एवं आकर्षक है। उसने यह बातें मन में सोची और अपने पति से पूछा, "क्या आध्यात्मिक धन में सांसारिक धन-सम्पत्ति से अधिक सुख है या इसके विपरीत सांसारिक धन में अधिक सुख है ?" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "धनवान लोगों का जीवन जैसा कि है, इस जीवन में सच्ची खुशी, सच्चा सुख नहीं है, प्रकृत स्वतन्त्रता भी नहीं है।"

तब मैत्रेयी ने पूछा, "वह क्या वस्तु है, जिस पर अधिकार पाकर आपको पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाती है, संसार के लोभ-लालच और आकर्षणों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ? मुझे जीवन के इस अमृत के विषय में जानकारी प्रदान कीजिये, मैं इसे चाहती हूँ।"

याज्ञवल्क्य ने अपनी सारी सम्पत्ति कात्यायनी को दे दी और उनकी इस पत्नी मैत्रेयी को उनका आध्यात्मिक धन मिल गया। वह आध्यात्मिक धन क्या था ? इस विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है—

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः
प्रियोभवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवतिः।
न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया
भवत्यामनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति।

इस पद्य के कई अर्थ। मैक्समुलरहैं इसका अनुवाद एक तरह से करते हैं, कई हिन्दू विद्वान अन्य प्रकार का करते हैं। दोनों अनुवाद ठीक हैं।

एक व्याख्या के अनुसार भाव यह है, "पति के प्रिय होने का कारण यह नहीं कि उसमे कुछ गुण या विशेषताएँ होती हैं या कि उसमे विशेषतः कोई बात प्रिय होती है, परन्तु वह प्रिय होता है इसलिए कि वह स्त्री के लिए दर्पण का काम देता है। जिस प्रकार हम दर्पण में अपने आपको प्रतिबिम्बित देखते हैं, इसी प्रकार पत्नी अपने पतिरूपी दर्पण में अपने आप को देखती है और इसलिए वह अपने पति से प्यार करती है और इसीलिए उसका पति उसे प्यारा लगता है।"

आप जानते हैं कि यदि प्रेम बदले में प्रेम न लाया करता, तो कोई व्यक्ति प्रेम न करता।[1] इससे मालूम होता है कि हम प्रेम अपने आप ही

1. इसीलिए किसी शाइर ने कह रखा है—
उल्फ़त का जब मजा है, दोनों हों बेकरार।
दोनों तरफ़ से आग हो बराबर लगी हुई॥

से, जैसे हमारा अपना आप दूसरों में प्रतिबिम्बित होता है, करते हैं। हम अपने सच्चे अपने आपको—परमात्मा को—अपने अन्दर देखना चाहते हैं और हम किसी व्यक्ति को केवल उसी के कारण प्रेम नहीं करते।

• किसी भी वस्तु से हमारा प्रेम केवल उस चीज के लिए नहीं होता, हम उसे अपने आप, अपने आत्मा के कारण अर्थात् उसे अपना आप समझ-कर प्यार करते हैं।

कष्ट उठाइये, सुख पाइये

भारत में एक बहुत बड़ा पहलवान और मल्लयोद्धा रहता था। उसने एक नाई से कहा कि उसकी भुजा को कुरेदे और उस पर सिंह का चित्र गोद दे। उसने नाई से अनुरोध किया कि सिंह का चित्र बहुत ही महान् और भव्य हो तथा दोनों भुजाओं पर उत्कीर्ण किया जाय। उसने यह भी बताया कि जब उसका जन्म हुआ था, उस समय उसके जन्म-राशि में सिंह बैठा हुआ था। इसलिए उसका जन्म राशि के चिन्ह अर्थात् सिंह के पूरे प्रभाव के अधीन हुआ था, और उसे एक बहादुर आदमी समझा जाना चाहिये।

नाई ने सूई उठायी और उसकी भुजा पर चित्र गोदने के लिए तैयार हुआ। उसने अभी सूई की नोक को उसकी भुजा पर रखकर तनिक गोदना चाहा, कि पहलवान महोदय के होश के तोते उड़ने लगे और सहनशक्ति के छक्के छूट गये। उसका साँस फूलने लगा। उसने नाई को सम्बोधित करके कहा, "ठहरो, ठहरो, जरा दम लो। यह तुम क्या करने लगे हो?"

नाई ने उत्तर दिया, कि वह शेर की दुम बनाने लगा है। "दुम बनाने लगे हो!" पहलवान के मुँह से अनायास ये शब्द निकल गये और सच तो यह है कि पहलवान महोदय सूई की चुभन की पीड़ा के सहन करने की क्षमता नहीं रखते थे। उन्होंने बहुत ही विचित्र बहाना घड़ा और बोले, "तुम जानते नहीं क्या कि फैशनेबल व्यक्ति अपने कुत्तों और घोड़ों आदि की पूँछें कटवा डालते हैं? इसलिए वह शेर, जिसकी दुम नहीं होगी, बहुत बलवान व भयंकर समझा जायगा। तुम शेर की पूँछ क्यों गोदना चाहते

हो ? पूँछ की कोई आवश्यकता नहीं ।"

"जी, बहुत अच्छा," नाई ने कहा, "मैं दुम नहीं उकेरूँगा । मैं शेर के शरीर के दूसरे अंगों का चित्रण करूँगा ।" और नाई ने फिर सुई उठायी और अभी नोक को भुजा की त्वचा में ज़रा चुभोया ही था कि पहलवान इसे भी सहन न कर सका । उसने नाई को रोका और कहा, "अब तुम क्या करने चले हो ?"

नाई ने उत्तर दिया, "जनाब, सिंह के कान बनाने चला हूँ ।"

पहलवान बोला, "अबे नाई ! तुम बहुत ही मूर्ख हो । तुम जानते नहीं क्या कि लोग कुत्तों के कान कटवा देते हैं ? वे लम्बे-लम्बे कान वाले कुत्ते नहीं रखते । तुम नहीं जानते कि शेर जिसके कान नहीं होते, सर्वश्रेष्ठ होता है ?"

नाई रुक गया । कुछ ही क्षण के पश्चात् उसने सूई उठाई और पुनः पहलवान की भुजा में चुभोयी । पहलवान इसे सहन न कर सका और नाई को रोककर बोला, "अबे नाई ! अब यह तू क्या करने जा रहा है ?"

नाई ने उत्तर दिया, "मैं अब सिंह की कमर का चित्रण करने लगा हूँ ।"

पहलवान ने कहा, "क्या तूने हमारा काव्य नहीं पढ़ा, क्या तूने भारतीय कवियों के विचारों का अवलोकन नहीं किया ? सिंहों का चित्र बताते समय कलाकार सदा उनकी कमर बहुत छोटी-पतली और नाम-मात्र ही बनाया करते हैं ? तुझे सिंह की कमर बनाने की आवश्यकता नहीं है ।"

नाई ने अब आवेश में आकर अपने रंग और गोदने की सूइयाँ एक ओर फेंक दीं और पहलवान से कहा कि वह तुरन्त उनकी आँखों से दूर हो जाय ।

देखिये यह एक व्यक्ति है, जो बड़े गौरव और अनुरोधपूर्वक कहता है कि यह अपने जन्म-लग्न से, जिसमें सिंह बैठा हुआ है अर्थात् उस राशि से, बहुत प्रभावशाली हुआ है, सिंह के समान बहादुर है । यह एक व्यक्ति है, जो अपने आपको बहुत बड़ा पहलवान कहता है—बहुत बड़ा मल्ल-

योद्धा होने की डींग हांकता है। यह एक व्यक्ति है जो अपने आपको सिंह जताता है। वह अपने शरीर पर सिंह गोदवाना चाहता है, परन्तु सुई की जरा-सी चुभन भी सहन नहीं कर सकता।

इसी प्रकार के व्यक्तियों की बहुसंख्या है, जो परमात्मा के दर्शन करना चाहते हैं, जो वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, जो हर घड़ी और पल के पूर्ण सत्य को जानने की इच्छा करते हैं, जो अपने आपको हर बात में सम्पूर्ण बनाना चाहते हैं, एक आध ही मिनट में ईसा मसीह बन जाना चाहते हैं। और जब उस सिंह (सत्य) को अपने आत्मा पर गोदवाने का समय आता है—जब सच्चाई, नेकी, ईमानदारी के सिंह को अपने व्यक्तित्व—अपनी प्रकृति में उत्कीर्ण करने का समय आता है, तो वे चुभन को—चुभती हुई वेदना को सहन नहीं कर सकते। यहां आकर वे टाल-मटोल करते, बहाने बनाते हैं, बग़लें झांकने लगते हैं। आखिर यह बात क्या हुई कि मैं मूल्य चुकाना चाहता नहीं किन्तु वह वस्तु चाहता हूं।

• संसार में अच्छी शाश्वत वस्तु पाने के लिए—ऊंचे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मिहनत, व निरन्तर प्रयत्न करना और कष्ट उठाना अत्यावश्यक है। कष्ट के बिना सुख नहीं मिलता।

इच्छापूर्ति का रहस्य

एक था व्यक्ति—

वह अपने एक परम मित्र को पत्र लिख रहा था, जिसे मिलने के लिए उसका हृदय तड़प रहा था और अपने मन के इस इच्छा-वेग पर काबू पाना उसके बस से बाहर हुआ जाता था। वह अपने मित्र से लम्बे समय से बिछुड़ा हुआ था। वह जो पत्र मित्र को लिख रहा, बहुत लम्बा था। वह पृष्ठों पर पृष्ठ लिखता चला जा रहा था। पत्र लिखने में उसका मन इतना मग्न था—इतना खोया हुआ था—कि वह एक क्षण के लिए भी न रुका और न उसने सिर उठाकर देखा। इस पत्र के लिखने पर पौन घण्टा बीत गया, परन्तु क्या मजाल जो इस अवधि में उसने अपना सिर जरा भर भी ऊपर उठाया हो। जब पत्र का लिखना सम्पन्न हुआ और अन्त में अपने हस्ताक्षर करके उसने जो सिर उठाया, तो क्या देखता है कि उसका परम प्रिय मित्र उसके सामने खड़ा है।

वह उचक कर खड़ा हो गया और अपने अदम्य प्रेम को अभिव्यक्त करने के लिए उसने मित्र को अपने आलिंगन में भींच लिया। और ये शब्द अनायास ही उसके मुंह से निकल पड़े, "अरे तुम यहाँ हो ?"

मित्र ने उत्तर दिया, "मैं तो यहाँ आध घण्टे से भी अधिक समय से खड़ा हूँ।"

तब उस व्यक्ति ने अपने मित्र से कहा, "भाई वाह ! यदि तुम इतने समय से यहाँ खड़े थे, तो मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?"

मित्र ने उत्तर दिया, "तुम अपने काम में इतने तल्लीन थे कि मैं

हस्तक्षेप करना या बीच में टोक देना उचित न समझा।"

"सचमुच, सचमुच !!"

आपकी इच्छाएँ पत्र लिखने के समान हैं। आप सदा कुछ न कुछ चाह रहे हैं, किसी के लिए व्याकुल हैं, तड़प रहे हैं, किसी विषय के प्यासे हैं—भूखे हैं, परेशान हैं, चिन्ताकुल हैं—ये सब कुछ पत्र लिखना ही तो है और आप लिखते चले जाते हैं। परन्तु वह जिसकी ओर आप पत्र लिख रहे हैं—वे विषय, जिनके लिए आप इच्छा कर रहे हैं, प्राप्त करने के लिए व्याकुल हैं, वे विषय कर्म के रहस्यपूर्ण विधान के अनुसार पहले ही से आपके सामने है। परन्तु आप उन्हें महसूस क्यों नहीं करते ? क्यों नहीं उन्हें अपने सामने या पास देखते ? इसलिए कि आप इच्छा करते चले जा रहे हैं—कामना की दौड़ में तन्मय हैं—आप पत्र लिख रहे हैं सब कुछ विस्मृत करके। यही एक कारण है।

ज्यों ही आप इच्छा की दौड़ बन्द कर देंगे—ज्यों ही आप पत्र लिखना समाप्त कर देंगे, आप देखेंगे कि जिन विषयों के लिए आप हलकान हो रहे हैं, वे आपके सामने हैं।

• इच्छाएँ उसी क्षण पूर्ण हो जाती हैं, जभी आप इच्छा करना समाप्त कर देंगे।

पवित्र छाया

बहुत पुराने समय की बात है—

इस देश में एक सन्त रहते थे। वे इतने ऊँचे और सच्चे सन्त थे कि स्वर्ग के देवदूत भी उनके दर्शन के लिए पृथ्वी पर उतर आते थे। उनको देखकर देवदूत चकित रह जाते थे कि मर्त्य-लोक का कोई मनुष्य भी इतना देवता-स्वरूप हो सकता है। वे सन्त बड़े साधारण रूप में दैनन्दिन जीवन व्यतीत करते थे। उनके अत्यन्त सादा व्यक्तित्व से अनायास ही बिना उनको ज्ञात हुए इस प्रकार सद्गुणों और नेकियों का विकिरण होता था, जैसे सितारों से आलोक और फूलों से सुगंध। उनकी दिनचर्या का सार-तत्त्व केवल दो शब्दों में बसा हुआ था—देना या दया और क्षमा। वे प्राणी-मात्र को कुछ-न-कुछ देते थे—दया बरसाते थे क्षमा, बाँटते थे। फिर भी ये दोनों शब्द अपने होंठों पर नहीं लाते थे। ये शब्द उनके अविरल मुसकान, उनके करुण-भाव, उनकी क्षमाशीलता और उनकी दान-दक्षता से व्यक्त होते थे।

देवदूतों ने भगवान् से प्रार्थना की, "जगदीश्वर! इस सन्त महात्मा को चमत्कारों की विभूति प्रदान कर दीजिये।"

जगदीश्वर ने उत्तर दिया, "मुझे स्वीकार है। सन्त महाशय से पूछो वह क्या चाहता है?"

देवदूतों ने सन्त महात्मा से कहा, "क्या आप चाहते हैं कि आपके हाथों को यह शक्ति मिल जाय कि वे जिस भी रोगी को छुएँ, वह तुरन्त स्वस्थ हो जाय?"

"नहीं," सन्त ने उत्तर दिया, "मैं चाहता हूँ कि यह कार्य स्वयं भगवान् करें।"

"क्या यह विभूति पसन्द करेंगे, जिसके द्वारा आप पापी आत्माओं को सुधार सकें और भटकते हुए हृदयों को सच्चे मार्ग पर डाल दें?"

"नही, यह काम देवदूतों का है। मैं विनयपूर्वक कहता हूँ, मैं यह सुधार-उद्धार का काम नहीं करता।"

"क्या आप संतोष व धैर्य का प्रतीक बनना चाहते हैं और अपनी गुण-श्री से लोगो को आकर्षित करके ईश्वर की महिमा को उजागर चाहते हैं?"

"कदापि नही," सन्त महात्मा ने उत्तर दिया, "यदि मनुष्य मेरे द्वारा आकर्षित होने लगेंगे, तो वे ईश्वर से विमुख हो जायेंगे। ईश्वर के पास अपनी महिमा को उजागर करने के लिए अन्य अनेक साधन हैं।"

"तो आखिर आप क्या चाहते हैं?" देवदूतों ने चिल्लाकर कहा।

"मैं किसलिए इच्छा करूँ," सन्त ने मुसकराते हुए पूछा। "भगवान ने मुझ पर अपनी कृपा बरसा रखी है, क्या उसी के द्वारा मुझे प्रत्येक वस्तु प्राप्त नही करनी चाहिये?"

परन्तु देवदूतों ने अनुरोधपूर्वक कहा, "आपको एक चमत्कार की शक्ति माँग लेनी चाहिये या फिर कोई एक चमत्कार-शक्ति आप पर बलपूर्वक ठूँस दी जायगी।"

"बहुत अच्छा," सन्त महात्मा ने कहा, "मैं उसे जाने बिना ही बहुत कुछ कर सकूँ।"

देवदूत यह सुनकर बहुत परेशान हुए। उन्होंने आपस में सलाह-मशवरा किया और यह योजना प्रस्तुत की: सन्त-महात्मा की छाया सदा उसके पीछे ही पड़े या दूसरी ओर ताकि वे उसे (छाया को) देख न सकें। उस छाया मे बीमारी को दूर करने, पीड़ा को हरने और शोक से मुक्त करके सुखी रखने की शक्ति हो।

यह योजना पारित हो गयी फलस्वरूप सन्त-महात्मा अपनी मौज में

जिधर भी जाते, उनकी छाया पीछे की ओर पड़ती या दूसरी ओर से पृथ्वी पर पड़ती। इससे सूखे-खड़क मार्ग हरे-भरे हो उठते, मुरझाए हुए पेड़-पौधे लहलहाने लगते, फूल-फल से लद जाते, सूखे नदी-नालों मे स्वच्छ पानी बह निकलता, पीले पड़े छोटे-छोटे बच्चों को सुन्दर ताजा रंग मिल जाता और निराश, दुःखी आत्माओं को हर्षोल्लास प्राप्त हो जाता।

परन्तु वे सन्त-महात्मा पूर्ववत् साधारण रूप में अपना दैनन्दिन जीवन व्यतीत करते—अपने सद्गुणों को उसी प्रकार फैलाते हुए, जिस प्रकार सितारे आलोक बिखेरते और फूल सुगंधि। परन्तु यह सब उन्हें ज्ञात नहीं होता था। उनके अनजाने में ही—उन पर विदित हुए बिना ही यह सभी कुछ होता था।

लोग-बाग उन महात्मा की विनम्रता, उनकी दीनता का बहुत आदर करते, चुपचाप उनके पीछे-पीछे चलते, उनके चमत्कारों के विषय मे उनसे कोई बात न करते। धीरे-धीरे लोग-बाग उन महात्मा का नाम भूल गये और उन्हें केवल "पवित्र छाया" नाम से पुकारने या याद करने लगे।

- जो व्यक्ति अपने स्वार्थ, हितों और सांसारिक आकांक्षाओं से ऊपर उठकर स्वच्छ जीवन जीता है, उसकी छाया के नीचे समस्त विभूतियाँ खेलती हैं। उसके व्यक्तित्व से बिना उसे पता चले सहज रूप में सद्भावों तथा नेकियों का इस प्रकार विकिरण होता है, जैसे सितारों से आलोक और फूलों से सुगंध !!

युधिष्ठिर और कुत्ता

भारत के एक महाराजा थे। नाम था उनका युधिष्ठिर। वे सत्य के मार्ग के अडिग राही थे। कहा जाता है कि वे हिमालय की चढ़ाई चढ़ रहे थे, ताकि उनका शरीर बर्फों में पिघल जाय। किसी कारणवश वे अपने परिवार के साथ, हिमालय की चोटियों पर आरोहण कर रहे थे।

कहा जाता है कि युधिष्ठिर नेकी अर्थात् सत्यता के मार्ग पर चल रहे थे। वे सत्य की खोज कर रहे थे। क़दम-कदम निरन्तर आगे बढ़ रहे थे। उनका छोटा भाई उनका अनुसरण कर रहा था। इस छोटे भाई के पीछे दूसरा भाई और इसी प्रकार ठीक क्रम के अनुसार परिवार के अन्य लोग पीछे-पीछे आरोहण कर रहे थे। उनके भाइयों के पीछे उनकी पत्नी चल रही थी। वे स्वयं सबसे आगे थे। उनका मुंह लक्ष्य की ओर था। उनकी आँखें सत्य के ऊपर लगी हुई थीं।

उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी, जो उनके पीछे आ रही थी, रो रही थी। वह लड़खड़ा कर गिर पड़ी थी। थक-टूट कर बेहाल हो गयी थी। उनका अनुसरण नहीं कर सकती थी और मृत्यु से जूझ रही थी। महाराजा युधिष्ठिर ने उसकी ओर मुड़कर न देखा। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि कुछ ही फुट दौड़कर उनके पास पहुंच जाय, वहाँ से उसे अपने साथ ले चलेंगे—"ऊपर मेरे पास चढ़ आओ, ऊपर-ऊपर मुझ तक पहुँच जाओ।"

उनकी पत्नी और ऊपर न चढ़ सकी। तीन फुट-मात्र फासला था, जो ऊपर न जा सकी। वह उनसे पिछड़ गयी थी। उन तक ऊपर चढ़ जाने

की उसमें हिम्मत रह नहीं गयी थी और वह पीछे भी न लौटी। सत्य से एक पग भी पीछे हटने की आज्ञा नहीं थी। महाराजा युधिष्ठिर कभी कदापि एक पग तक पीछे नहीं हटते थे। उनकी पत्नी लुढ़क गयी थी, परन्तु उसकी खातिर महाराज सत्य के मार्ग से पीछे नहीं लौटे।

पिछले जन्मों में आपकी हजारों पत्नियां रह चुकी थीं और यदि आप भविष्य में भी जन्म ग्रहण करते रहेंगे, तो नहीं जानते आप कितनी बार फिर ब्याह करेंगे। आपके कितने सम्बन्धी पहले जन्म में थे और न जाने भावी जन्मों में और कितने सम्बन्धी बनेंगे। इन सम्बन्धों, रिश्ते-नातों की खातिर आपको सत्य से पीछे हटना नहीं होगा—नहीं हटना होगा। आगे बढ़िये, आगे बढ़िये। कुछ भी हो जाय, आपको पीछे नहीं हटना। और संसार की कोई शक्ति आपको पीछे हटा न सके। आप अपनी पत्नी से अधिक सम्मान सत्य का कीजिये। ईश्वर के लिए अधिक निष्ठा ग्रहण कीजिये। सत्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव-जाति से है। ईश्वर या सत्य निरन्तर—प्रति समय सम्बन्ध रखता है—अविरत प्रभावी है। इसका सम्बन्ध सदा सर्वदा वर्तमान है—अनादि अनन्त है। और आपके सांसारिक सम्बन्ध और रिश्ते ऐसे नहीं हैं—सर्वदा क्षण-भंगुर हैं।

इस नियम—इस विधान—को याद रखिये कि जो चीज आपके लिए वास्तव में अच्छी है—श्रेयस्कर है, निश्चय ही वह आपकी पत्नी या आपके बन्धुओं, साथियों के लिए भी वास्तव में मंगलकारी होनी चाहिये। यदि आप देखते हैं कि आपके लिए अपनी पत्नी से अलग रहना सचमुच ही श्रेयस्कर है, तो याद रखिये कि आपकी पत्नी के भी लिए आपसे अलग रहना वास्तव में श्रेयस्कर है। यह प्रकृत नियम है—अटल विधान है। वही एक ईश्वर या सत्य है जो आपके व्यक्तित्व की तरह में रहता है, वही आपकी पत्नी के व्यक्तित्व के अन्तःस्थल में भी वर्तमान है।

महाराजा युधिष्ठिर की पत्नी गिर पड़ी—चल बसी—परन्तु महाराजा सीधा आगे बढ़ते गये। अपने भाइयों से उन्होंने कहा कि उनका अनुसरण करें। वे सब भाई महाराजा के पीछे कुछ समय तक दौड़ते चले गये,

परन्तु सबसे छोटा भाई उनके साथ और आगे चढ़ाई न चढ़ सका। वह लड़खड़ाने लग गया। थकान ने उसे दबोच लिया और गिरने ही को था कि चिल्ला उठा, "भैया! भैया युधिष्ठिर! मैं मृत्यु के कवल में फँस गया हूँ। मुझे बचा लीजिये—मुझे बचा लीजिये।"

महाराजा युधिष्ठिर ने अपने लक्ष्य से आँखें मोड़कर पीछे की ओर न देखा—सत्य से नजर हटा कर उन्होंने भाई की सुधि न ली। वे बढ़ते गये आगे—आगे ही बढ़ते चले गए। उन्होंने केवल अपने छोटे भाई को आवाज दी, "हिम्मत बनाए रखो, साहस अपने भीतर बटोर कर मुझ तक ऊपर पहुँच जाओ, दो-तीन फुट ही का तो फासला है, तय कर लो, इस शर्त पर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा। परन्तु मैं किसी तौर पर भी तुम्हें संभालने या उठाने के लिए एक पग भी पीछे नहीं हटूंगा।"

युधिष्ठिर आगे बढ़ते गये। सबसे छोटा भाई चल बसा। कुछ समय के पश्चात् दूसरा भाई, जो रस्से की छोर पर था, चिल्लाया और गिरने ही वाला था। उसने सहायता के लिए पुकार कर कहा, "भैया, भैया युधिष्ठिर! मेरी सहायता कीजिये, सहायता कीजिये भैया! मैं गिर चला हूँ।" परन्तु भैया युधिष्ठिर ने मुड़कर न देखा। वे आगे बढ़ते चले गये। इस तरह से सभी भाई मौत की गोद में सो गये हमेशा-हमेशा के लिए। परन्तु महाराजा युधिष्ठिर एक पग भी पीछे न हटे—बढ़ते चले गये आगे-आगे। आगे बहुत दूर चले गये सत्य के मार्ग पर!

कहानी में बताया गया है कि महाराज युधिष्ठिर जब सत्य के शिखर पर पहुँचे—जब उन्होंने अपने लक्ष्य को जा लिया, ईश्वर स्वयं मूर्तिमान होकर उनके सामने प्रकट हुए—सत्य स्वयं मानव रूप धारण करके सामने उपस्थित हुए। जैसा कि हम बाइबल में पढ़ते हैं कि ईश्वर पेण्डुकी (फ़ाख्ता) के रूप में प्रकट हुए, वैसे ही हिन्दुओं के शास्त्रों में हम कई व्यक्ति के सामने देवदूत के रूप या स्वर्ग के राजा (इन्द्र या विष्णु) के रूप में ईश्वर के प्रकट होने की कहानियाँ पढ़ते हैं।

अस्तु कहानी में कहा गया है कि जब महाराजा युधिष्ठिर सत्य के

शिखर पर पहुँच गये, सत्य मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ और उनसे बोला कि वे सशरीर स्वर्ग में जाएँ—शरीर के साथ देवलोक में आरोहण करें। जैसा कि हम बाइबल में कई व्यक्तियों के जीवित रूप में स्वर्ग पहुँचने की कहानी पढ़ते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर की कहानी में उनसे जीवित अवस्था में (सशरीर) स्वर्ग में आरोहण करने के लिए कहा गया है।

युधिष्ठिर ने जब अपने सीधे हाथ की दिशा में देखा, तो उन्होंने अपने साथ एक कुत्ते को पाया। महाराज युधिष्ठिर बोले, "हे ईश्वर, हे सत्य ! यदि आप मुझे उच्चतम स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ ले चलिये। इस कुत्ते को भी मेरे साथ उत्कृष्टतम स्वर्ग में चलने दीजिये।"

मूर्तिमान ईश्वर या सत्य बोले, "राजा युधिष्ठिर, यह हो नहीं सकता। कुत्ता उच्चतम स्वर्ग में प्रवेश पाने का अधिकारी नहीं है। कुत्ते को अभी कई योनियों में से गुजरना है। कुत्ते को अभी मनुष्य योनी प्राप्त नहीं हुई। इसे मनुष्य योनि में पहुँचना होगा और सच्चा जीवन जीना होगा। एक पवित्र, शुद्ध, निष्कलंक मनुष्य का जीवन बिताना होगा। कुत्ता, अभी, इस अवस्था में नहीं पहुँचा है, तब इसे कैसे उच्चतम स्वर्ग में ले जाया जा सकता है। तुम तो उच्चतम स्वर्ग में सशरीर ले जाये जाने के योग्य एवं अधिकारी हो, परन्तु यह कुत्ता नहीं।"

इस पर युधिष्ठिर ने कहा, "हे सत्य, हे ईश्वर ! मैं आपके केवल आपके ही लिए यहाँ आया हूँ, स्वर्ग के लिए नहीं—वैकुण्ठ के लिए नहीं। यदि आप मुझे उच्चतम स्वर्ग में ले जाना चाहते हैं और वहाँ सिंहासन पर बिठाना चाहते हैं, तो आपको मेरे साथ इस कुत्ते को भी ले जाना होगा—अवश्य ले जाना होगा। मेरी पत्नी मेरा साथ नहीं दे सकी। वह सच्चाई के मार्ग में डगमगा गयी। मेरा सबसे छोटा भाई मेरे साथ नहीं चल सका, वह भी सच्चाई के मार्ग में लुढ़क गया। मेरे दूसरे भाई भी मुझ तक न पहुँच सके, मुझे छोड़ गये। उन्होंने दुर्बलता के सामने हथियार डाल दिये। उन्होंने कामनाओं को छुट्टी दे दी कि वे उन पर अधिकार जमा लें। वे

मेरे साथ क़दम से क़दम मिलाकर नहीं चल सके, परन्तु देखिये, यह अकेला कुत्ता यहाँ तक मेरे साथ आ गया है, यह कुत्ता देखिये ना। इसने मेरे साथ दुःखों, कष्टों को बाँटा है। इसने संघर्षों में मेरा साथ दिया है, इसने मेरी लड़ाइयाँ लड़ी हैं। इसने मेरे परिश्रम और वेदनाओं में हिस्सा लिया है—इस कुत्ते ने मेरा साथ दिया है। यदि यह कुत्ता मेरे साथ मेरी कठिनाइयों को बाँटता है—झेलता है, मेरी भीषण लड़ाइयों में—संघर्षों में शरीक होता है, तो यह मेरे स्वर्ग—मेरे देवलोक—सुखों का उपभोग क्यों न करे?"

युधिष्ठिर ने अनुरोधपूर्वक दृढ़ शब्दों में कहा, "मैं आपके स्वर्ग या देवलोक में कदापि नहीं जाऊँगा, यदि आप स्वर्ग या देवलोक में इस कुत्ते को मेरा पूरा हिस्सादार नहीं बनायेंगे। आपका स्वर्ग मेरे किसी काम का नहीं, यदि आप इस कुत्ते को मुझे अपने साथ ले जाने की आज्ञा नहीं देंगे।"

मूर्तिमान सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर युधिष्ठिर से कहा, "कृपया, मुझे ऐसा करने को न कहिये, यह मत कहिये कि इस कुत्ते को आपके साथ स्वर्ग में ले जाया जाय।"

परन्तु युधिष्ठिर ने कहा, "दूर हो जाइये ब्रह्मा! आप सत्य या ईश्वर के मूर्तिमान स्वरूप नहीं हैं, आप कोई दानव हैं। आप ईश्वर या सत्य नहीं हो सकते। क्योंकि यदि आप सत्य हैं, तो अपने सामने अन्याय की कोई बात क्यों होने देते हैं? क्या आप इस बात की ओर ध्यान नहीं देते कि यदि आप मुझे तो स्वर्ग के विशेष सुखों के उपभोग की आज्ञा देते हैं और इस कुत्ते को उस उपभोग में मेरा साथी नहीं बनाते, तो आप कुत्ते के प्रति अन्याय का व्यवहार करते हैं, जिसने मेरे दुःखों, कष्टों में हिस्सा बाँटा है? यह बात ईश्वर या सत्य के लिए शोभा की बात नहीं—यह उनकी शान के शायान् नहीं है।"

युधिष्ठिर का यह अजेय हठ देखकर मूर्तिमान ईश्वर या सत्य अपने प्रकृत रूप में प्रकट हो गये और एकदम उसी समय यह कुत्ता कुत्ते के रूप

में न देखा गया, प्रत्युत इस कुत्ते के स्थान पर सर्वशक्तिमान् ईश्वर को स्वयं उनकी सम्पूर्ण महिमा-श्री के सहित साक्षात् देखा गया।

वास्तव में महाराज युधिष्ठिर की परीक्षा ली गयी थी। वे अंतिम परीक्षा में सफल हो गये। वे चरम परीक्षा की कसौटी पर शत-प्रतिशत पूरे उतरे।

यह है तरीका जिससे आपको सत्य के मार्ग पर चलना है। यदि आप का प्रिय से प्रिय सम्बन्धी, अत्यन्त घनिष्ठ से घनिष्ठ बन्धु, सखा आदि कोई भी व्यक्ति सत्य के मार्ग में आपके साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकता, तो आप उनकी ओर प्रियजन या घनिष्ठ बन्धु के रूप में पीछे मुड़कर नहीं देखिये और यदि कुत्ता इस सत्य-मार्ग में आपका साथ देता है, तो इस कुत्ते को अपना निकटतम बन्धु, प्रियतम सम्बन्धी समझिये। इस प्रकार आप उन लोगों को अपना मित्र, अपना सगा-सम्बन्धी बनाइये, जो सत्य-निष्ठा के सिद्धान्त पर आपके साथ पूरे उतरते हैं। जो सत्य के पालन में आपका समर्थन करते हैं—साथ देते हैं। आप अपने लिए दोस्तों या बन्धुओं का निर्वाचन इस सिद्धान्त पर मत कीजिये, कि वे आपकी बुरी प्रकृति का समर्थन करते हैं—उसमें आपका पक्ष लेते हैं। यदि आप इस सिद्धान्त पर अपने मित्रों का चुनाव करते हैं कि वे उसी प्रकार की बुरी व खराब प्रवृत्तियाँ रखते और उपभोग करते हैं, जैसे तुम करते हो, तो समझ लीजिये आपके दुःखों, कष्टों, विपत्तियों की कोई सीमा, कोई ठिकाना नहीं रहेगा।

• यदि आप विपत्तियों व दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं—यदि आप परम आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं—तो सत्य का मार्ग ग्रहण कीजिये, क्योंकि सत्य ही ईश्वर-स्वरूप—सच्चिदानन्द-स्वरूप है। इस मार्ग पर सदा चलते रहिये, यह मत देखिये कि कोई आपका साथ देता है या नहीं।

स्वार्थ स्वर्ग खो बैठा

दुर्भिक्ष के दिनों में एक ग़रीब महिला मर गयी। न्यायाधीश/धर्मराज ने उसके अच्छे और बुरे कर्मों का लेखाजोखा मालूम करने के लिए खूब छानबीन की। उन्होंने महिला द्वारा किए गये दान-पुण्य के कामों के विषय में देखा कि केवल एक ही पुण्य-कर्म उस महिला ने किया था। उसने एक बार भूख से मर रहे एक भिखारी को एक गाजर प्रदान की थी। धर्मराज के आदेश के अनुसार गाजर लायी गयी। यह गाजर उस महिला को स्वर्ग में ले जाने के लिए थी। महिला ने गाजर को हाथ में पकड़ लिया। गाजर उस महिला को अपने साथ लेकर ऊपर उठने लगी।

उस समय एक बूढ़ा भिखारी वहाँ आ गया। उसने महिला के फटे-पुराने चोगे के किनारे को पकड़ लिया और उसके साथ ऊपर की ओर उठने लगा। एक तीसरे दया के उम्मीदवार ने उस बूढ़े भिखारी के नीचे लटकते पांव को पकड़ लिया। इस प्रकार वह भी उन दोनों के साथ ऊपर स्वर्ग की ओर उठने लगा। होते-होते अन्य भी बहुत-से लोग अपने से ऊपर के व्यक्ति के लटकते हुए पाँवों को पकड़कर एक शृंखला के रूप में ऊपर की ओर उठते चले जाने लगे। इस प्रकार एक लम्बी शृंखला के रूप में अनेक लोग एक गाजर के प्रभाव से स्वर्ग की ओर ऊर्ध्व यात्रा करने लगे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि उस महिला को तनिक भी बोझ महसूस नहीं हो रहा था, जिसके चोग़े के किनारे से लोगों की यह लम्बी शृंखला लटक रही थी।

ये सब लोग लम्बी शृंखला के रूप में निरन्तर ऊपर और भी ऊपर

उठते चले गए। अन्त में स्वर्ग के द्वार पर पहुँच गये। यहाँ पहुँचकर उस महिला ने ज्यों ही नीचे की ओर दृष्टि डाली, तो देखती क्या है कि उसके घोंगे के साथ लोगों की एक लम्बी-सी लड़ी लटक रही है। उस समय न जाने उसके मन में क्या विचार उठा कि उसने उन शृंखला-बद्ध लोगों से झुँझला कर कहा—

'दूर हो जाओ, तुम लोग,
छोड़ दो, छोड़ दो, मेरा दामन,
यह गाजर मेरी है, मेरी ही है।'

अनजाने में उसने उन लोगों को नीचे धकेलने के लिए ज्यों ही अपने हाथ को हरकत दी, उसके हाथ से गाजर छूट गयी और वह बेचारी महिला उस पूरी मानव-शृंखला के साथ ही नीचे गिर पड़ी।

क़िस्मत की ख़ूबी देखिये, टूटी कहाँ कमन्द।
दो चार हाथ जबकि लबे-बाम रह गया॥

परन्तु ऐसा हुआ क्यों? स्वार्थ और संकीर्णता के कारण। याद रखिए, जरा से निःस्वार्थ पुण्य-कर्म में भी इतनी शक्ति होती है कि वह कर्ता के साथ अनेक अन्य लोगों को भी ऊर्ध्व लोक स्वर्ग या उन्नति की ऊँची मंजिलों तक उठा ले जा सकता है। परन्तु बुरा हो निजी स्वार्थ व संकीर्ण भाव का कि जब यह बीच में आ पड़ता है तो पुण्य को सर्वथा शक्तिहीन बना देता है और स्वार्थ-सेवी मनुष्य नीचे गिर पड़ता है। जो लोग अपने पुण्य-कार्य के फल को केवल निजी सम्पत्ति या अधिकार समझ बैठते हैं और दूसरे लोगों को उससे लाभ उठाने से रोक देते हैं, वे स्वयं ही न केवल उसके लाभ से बंचित रहते हैं, प्रत्युत ऐसे गिरते हैं कि पुनः उठना असंभव-सा हो जाता है।

एक पत्र मिला था, जो चेचक के रोग में ग्रस्त थी और उसने लिफ़ाफ़े को अपने होंठों से गीला करके अपनी अंगुलियों से दबा कर बन्द किया था। वह लिफ़ाफ़ा मिलने पर इस महिला ने जब उस लिफ़ाफ़े को खोला, तो इस पर चेचक के कीटाणुओं का असर हो गया, क्योंकि यह छूत का रोग होता है। फलस्वरूप समय पाकर यह महिला बीमार पड़ गयी।

बीमार होने से पहले जब यह महिला फ़ोटो खिचवाने गयी थी, तो कैमरे ने फ़ोटोग्राफ़र द्वारा प्रयुक्त बहुत बढ़िया प्लेट आदि सामग्री की सहायता से चेचक के प्रकट होने से पहले ही उसके निशान प्रस्तुत कर दिये थे, हालाँकि फ़ोटोग्राफ़र की अपनी आँखों ने उसे धोखा दिया और उसे मालूम न हो सका कि उस समय चेचक का रोग उक्त महिला की त्वचा के भीतर पहले ही से अपना प्रभाव फैला चुका था।

ख़ैर यही हाल इच्छाओं और वासनाओं का है। वास्तव में महिला के चेहरे पर चेचक के चिह्न कैमरे में देखे गये थे, जो अभी महिला के मुख-मण्डल पर प्रकट नहीं हुए थे। वास्तव में इच्छाओं का होना ही उनके पूरा होने की एक गारण्टी है। इच्छाएँ उन घटनाओं की अभिसूचक या दर्पण होती हैं, जो निश्चय ही घटित होने वाली होती हैं।

० इच्छाएँ आने वाली घटनाओं की सूचक होती हैं।

मिथ्या धारणा

भारत के एक गाँव में एक लड़का बहुत विद्वान बन गया। उसने विश्व-विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। जिन दिनों वह विश्वविद्यालय-नगर में रहता था, उन दिनों उसने कुछ यूरोपीय आचरण या चलन अपने जीवन में समा लिए।

विश्वविद्यालय में गर्मियों की छुट्टियाँ हुईं, तो वह ग्रामीण लड़का अपने घर आ गया, जहाँ उसके माता-पिता और दादी रहते थे। विश्व-विद्यालय से आते समय ग्रामीण छात्र ने महसूस किया कि समय का पता रखने के लिए यह कम से कम अपना क्लॉक (दीवार-घड़ी) तो साथ ले ही जाय, क्योंकि उसके गाँव में घड़ी का कहीं नाम न था। अस्तु वह अपना क्लॉक अपने साथ गाँव के घर में ले आया, जहाँ उसकी बूढ़ी दादी भी रहती थीं।

पुराने विचारों और रहन-सहन की यह दादी अम्माँ स्वभावतः नहीं चाहती थी कि क्लॉक को घर में स्थान दिया जाय। वह युवक छात्र अपने साथ अपना अंग्रेजी लिबास नहीं लाया था। ले-देकर यही क्लॉक एक ऐसी वस्तु थी, जिसे वह अपने अध्ययन-कार्य में अनिवार्य समझ कर साथ ले आया था। वह अपने साथ अंग्रेजी कुर्सी और मेज भी नहीं लाया था कि ये चीजें गाँव में अनोखी ही नहीं, भयंकर भी लगेंगी, परन्तु वह क्लॉक को सब प्रकार के जोखिम और आशंकाओं के बावजूद साथ ले आया था।

यह क्लॉक सारे परिवार ही को एक-आँख नहीं भाता था और विशेष रूप में दादी अम्माँ को इससे जन्म-जन्मान्तर का बैर था। वह इस क्लॉक

का घर लाया जाना बहुत खतरनाक समझती थीं। "हाय राम!" दादी अम्मां बोलीं, "यह हर समय की टिक-टिक—कितनी दुःखदायी—कितनी घृणित आवाज है यह! तोड़ दो इस शैतानी चक्कर को—फेंक दो कहीं दूर इसे। यह एक अपशकुन है—यह कोई भयंकर गुल खिलाएगा—यह किसी ध्वंस-लीला को जन्म देगा!"

युवक छात्र ने इस क्लॉक की उपयोगिता, लाभों और निर्विघ्नता की लम्बी-चौड़ी दलीलें देकर अपनी दादी अम्मां के भ्रम को दूर करने का प्रयत्न किया, परन्तु अम्मां जैसे एक चिकना घड़ा थीं कि उन पर बूंद भर प्रभाव नहीं ठहर पाया। वे न मानीं, पर न मानीं!! और दादी अम्मां के इस सतत विरोध, आपत्ति तथा समझाने-बुझाने के बावजूद लड़के ने क्लॉक का परित्याग न किया।

दुर्भाग्य की बात है कि एक रात चोर सेंध लगाकर उस घर में घुसे और कुछ जेवर व नकदी चुरा कर ले गये। इससे दादी अम्मां को इस बात का एक अतिरिक्त साक्षी या प्रमाण मिल गया कि जो कुछ वे कहती थीं, वह सच ही कहती थी। उनकी बात यदि मान ली होती, तो घर को यह हानि न पहुँचती। दादी अम्मां ने सशक्त शब्दों में कहा, "मैं न कहती थी कि यह क्लॉक कोई आफ़त लाएगा—ध्वंस-लीला रचेगा? दुष्ट चोर आये और हमारे जेवर, हमारी नकदी—रुपया-पैसा ले गये, लेकिन क्लॉक छुआ तक नहीं उन्होंने। वे जानते थे कि यदि वे क्लॉक उठाकर ले गये, तो बरबाद हो जायेंगे। अबे ढीठ लड़के! तू इस भयंकर और विपत्तिकारी वस्तु को घर में किसलिए रखे हुए है?" परन्तु लड़का एक लौह-पुरुष बना बैठा था। दादी अम्मां के उपदेश, झाड़-झपट, विरोध, क्रोध उस पर कुछ भी असर न कर सके। उसने अपने अध्ययन-कक्ष से क्लॉक न हटाया और कुछ ही दिनों के पश्चात् लड़के का पिता संसार से उठ गया। घर में कोहराम मच गया और दादी अम्मां शोक और क्रोध के मारे चण्डी का रूप धारण कर गयीं। चिल्लाकर बोलीं—"हठी, निर्लज्ज लड़के! इस भयंकर और अपशकुनकारी वस्तु को घर से उठाकर बाहर फेंक दे। इतने

दिन तक इसे पास रखने का साहस तुझे कैसे पड़ता है?"

लड़के ने इस पर भी क्लॉक का परित्याग न किया। घर में रखे ही रखा और दुर्भाग्य ने फिर तांडव किया—थोड़े ही समय के पश्चात् लड़के की माँ भी काल का ग्रास बन गयी। अब तो दादी अम्माँ के धैर्य का बाँध तहस-नहस हो गया। उनके लिए क्लॉक छाती पर मूँग दलने का पत्थर बन गया—नितान्त असहनीय हो गया। उस समय के अनेक लोगों की भाँति वे दादी अम्माँ भी समझती थीं कि क्लॉक में एक कीड़ा है, क्योंकि उन्होंने कभी कोई ऐसी वस्तु नहीं देखी थी, जो यन्त्र (मशीन) के द्वारा चलती हो। इसलिए वे समझती थीं कि क्लॉक को चलाने के लिए अवश्य ही इसके भीतर कोई न कोई कीड़ा होना चाहिये। क्लॉक अपने आप न टिक-टिक कर सकता है न चल ही सकता है, ये करामात—ध्वंसकारी करामात इसमें बैठे कीड़े ही की हो सकती है। दादी अम्माँ को यह भी विश्वास हो गया था कि उनके परिवार में तबाही का कारण यही क्लॉक है। इसलिए उन्होंने क्लॉक को उठाया और अपने निजी कमरे में ले गयीं। उसके नीचे एक पत्थर रखा और एक पत्थर हाथ में लेकर क्लॉक पर मार-मार कर उसे चकनाचूर करके रख दिया। दादी अम्माँ ने अपने प्रतिशोध-भाव और क्रोध-वेग के अरमान उस क्लॉक पर निकाल कर ही दम लिया।

ठीक इसी प्रकार लोग-बाग इधर-उधर की बात मन में जोड़कर मिथ्या इरादे और गलत फैसले करके कुछ का कुछ कर डालते हैं।

• अविद्या में घिरा—मिथ्या-धारणाओं में फँसा मनुष्य किसी भी वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता और भ्रममूलक निश्चयों को मन में बिठा लेता है और मनुष्य की यह स्थिति वास्तव में बहुत ही शोचनीय होती है।

लोभ छोड़िये, सब कुछ पाइये

अत्लान्ता के विषय में एक बहुत ही सुन्दर पुराण-कहानी विख्यात है। कहानी में कहा गया है कि अत्लान्ता से ब्याह करने की एक शर्त थी। जो व्यक्ति दौड़ में उससे आगे निकल जायगा, वही उसे ब्याहने का श्रेय प्राप्त कर सकेगा। कोई भी पुरुष दौड़ में उससे आगे नहीं निकल सका था। परन्तु एक व्यक्ति ने अपने देवता जुपिटर (बृहस्पति) का आह्वान किया। उनसे सलाह मांगी कि वह किस तरह अत्लान्ता के साथ दौड़ में आगे निकल सकता है।

देवता ने उसे बड़ी अद्भुत सलाह दी। उन्होंने कहा कि जिस मार्ग पर दौड़ दौड़ी जायगी, उस मार्ग के स्थान-स्थान पर सोने की ईंटें रख दी जायें। आप जानते हैं कि देवता अपने इस भक्त को अत्लान्ता से दौड़ जीतने के लिए यही तरीक़ा बताने के सिवा और कोई सहायता नहीं कर सकता था।

अत्लान्ता ने उच्चतम देवता से वरदान प्राप्त किया था, जिसके कारण वह विश्व में सबसे अधिक सबल और सबसे अधिक तेज दौड़ने की क्षमता से सम्पन्न हो गयी थी। परन्तु जुपिटर के उस भक्त ने दौड़ के सारे मार्ग पर सोने की ईंटें बिखेर दीं और अत्लान्ता को चुनौती दे दी।

दोनों ने दौड़ना आरंभ कर दिया। वह व्यक्ति अत्लान्ता से प्रकृत रूप में बहुत दुर्बल था। अत्लान्ता छूटते ही उससे आगे निकल गयी और इतनी आगे निकल गयी कि मुकाबिले में दौड़ने वाला अब उसे दिखायी नहीं देता था। अत्लान्ता ने देखा कि सड़क के साथ-साथ सोने की ईंटें पड़ी

हैं। वह रुक गयी और ईंटें उठाने लग गयी। वह ईंटें उठाती रही और इतने में वह पुरुष उससे आगे निकल गया। इससे एक-दो ही मिनट के पश्चात् अल्लान्ता फिर उससे आगे निकल गयी। अब उसने मार्ग की बाईं ओर एक और ईंट पड़ी देखी। वह ईंट उठाने के लिए उधर गयी और उसे उठा लायी।

इस अवधि में वह पुरुष फिर उससे आगे निकल गया और थोड़ी ही देर के बाद उस ललना ने फिर उसे जा लिया और वहाँ उसने और भी सोने की ईंटें पड़ी देखीं। वह रुक गयी और उन ईंटों को उठाने लग गयी। इस अवधि में जुपिटर-भक्त उससे आगे निकल गया। जब दौड़ का फासला समाप्त होने को आ रहा था, उस समय अल्लान्ता सोने की ईंटों के भारी बोझ से लद चुकी थी। उसके लिए यह बोझ लेकर जुपिटर-भक्त से आगे निकलना कठिन हो गया। अन्त में वह जुपिटर-भक्त उस ललना से आगे निकल कर दौड़ जीत गया। और अल्लान्ता ने जितना सोना मार्ग में उठाया था, वह भी दौड़ जीतने वाले उस जुपिटर-भक्त का हो गया और स्वयं वह ललना भी उसकी हो गयी। उसे मानो सब कुछ मिल गया।

यह हालत अधिक लोगों की होती है, जो न्याय और सत्य के मार्ग पर चलना चाहते हैं। आप जब सत्य के मार्ग पर चलना आरंभ करते हैं, तो पग-पग लुभाने वाले पदार्थ, नाना प्रकार की मोहक इच्छाएँ कामनाएँ आपको आकर्षित करती हैं, घेर लेती हैं। आप उन्हें ग्रहण करने के लिए—उनसे अपने दिल के अरमान निकालने के लिए रुक जाते हैं। परन्तु इस चक्र में आप पिछड़ जाते हैं। आप सत्य पाने की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। इस प्रकार आप न केवल यह दौड़ ही हार जाते हैं प्रत्युत सब कुछ खो बैठते हैं।

सावधान रहिये सांसारिक आसक्ति से और भौतिक कामनाओं से ! आप परम सुखदायक और आनन्दमय सत्य-तक पहुँच जाएँ और सांसारिक विषयों का भी उपभोग कर सकें, ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। कहावत है कि यदि आप सत्य का सुख प्राप्त करते [redacted], तो आप सांसारिक

सुखों के भोगने के योग्य नहीं रहते। आप सांसारिक विषयों के उपभोग में लग जाते हैं और सत्य इस प्रलोभन में आपको पीछे डालकर चुपके से आगे निकल जाता है। इसलिए सांसारिक प्रलोभनों से—आसक्ति से—छुटकारा हासिल करो और इसके साथ ही अपने मन से भेद-भाव एवं घृणा को निकाल दो, जो प्रलोभन या आसक्ति ही का दूसरा रूप है। प्रत्येक विषय से मन को हटा लीजिये और एक वस्तु पर—एक तथ्य पर—एक सत्य पर—अपने आत्मा पर केन्द्रित कर दीजिये। उसी समय उसी स्थान पर आपको ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

• लोभ सांसारिक पदार्थों में आसक्ति—सत्य और ज्ञान को नहीं छू सकते। यह अपने परम आनन्दमय स्वरूप के पहचानने में बाधक है। इसे हटा दीजिए और हाथ पर सरसों जमाइये—अपने सच्चे स्वरूप—परम सत्य के दर्शन कीजिये—सब कुछ पाइये!

अन्धकार-दानव

हिमालय के किसी भाग में असभ्य जाति के लोग रहते थे। वे असभ्य लोग कभी आग नहीं जलाते थे। संसार के प्राचीन असभ्य लोग भी आग नहीं जलाते थे। वे नही जानते थे कि आग कैसे जलायी या पैदा की जाती है। वे लोग सूखी मछलियाँ खाकर पेट भर लेते थे। खाना पकाते नहीं थे, धूप से गर्मा लेते या सुखा लिया करते थे।

सायंकाल अँधेरा फैलने से पहले ही वे सो जाया करते थे और सूर्य के उदय के साथ जाग उठते थे। इस प्रकार उन्हें भौतिक अँधेरे में घूमने-फिरने का अवसर नहीं मिलता था। वह जानते ही न थे कि अँधकार भी कोई चीज होती है।

उस स्थल के निकट एक बहुत बड़ी गुफ़ा थी। वे असभ्य लोग समझते थे कि उनके कुछ अत्यन्त पूज्य पूर्वज उस गुफा में रहा करते थे। वास्तव में उन लोगों के कुछ पूर्वज इस अँधेरी गुफा में घुसे थे और इसके अन्दर दलदल में फँसकर मर गये या संभवतः गुफ़ा के अन्दर की दीवारों के आगे बढ़े हुए पत्थरों के कोनों से सिर फुड़वा कर प्राणों से हाथ धो बैठे थे।

वे असभ्य लोग इस गुफ़ा को बहुत पवित्र स्थान मानते थे, परन्तु चूँकि उन्हें अँधेरे से कभी वास्ता नहीं पड़ा था, इसलिए गुफ़ा के अन्दर का अँधकार उनके निकट एक भीषण महाकाय दानव था, जिससे वे छुटकारा पाना चाहते थे। (यह बात बड़ी बेहूदा तथा मूर्खतापूर्ण जान पड़ती है, परन्तु आज के लोग इससे भी अधिक या बड़ी मूर्खता की बातें करते हैं।)

ख़ैर, किसी ने उन लोगों को बता दिया था कि यदि वे इस गुफ़ा की पूजा किया करेंगे, तो वह विकराल दानव गुफ़ा से चला जायगा। अतः वे गुफ़ा के सामने गये और दण्डवत् प्रणाम-पूर्वक लेट गये। बरसों यह क्रम जारी रहा, परन्तु इस पूजा-प्रणाम का कुछ प्रभाव न हुआ, दानव गुफ़ा से न गया, पर न गया।

इसके पश्चात् किसी व्यक्ति ने उन्हें बताया कि यदि वे इस दानव को सतायेंगे, इससे युद्ध लड़ेंगे, तो वह गुफा से भाग जाएगा। फिर क्या था, उन असभ्य लोगों ने सब प्रकार के तीर, तरह-तरह की लाठियाँ, चट्टानों के टुकड़े, सब तरह के हथियार, जो उन्हें मिल सके, ले लिए और गुफ़ा पर आक्रमण कर दिया। गुफ़ा के अन्दर तीरों की झड़ी लगा दी और लाठियों से अँधेरे को रूई की भाँति धुन डालने के लिए प्रहार पर प्रहार किये, परन्तु अँधकार टस से मस न हुआ, ज्यों का त्यों डटा रहा, कहीं न गया।

एक अन्य व्यक्ति ने सलाह दी, "अनशन करो, अनशन। तुम्हारे अनशन से दानव (अँधकार) चला जाएगा। इतने वर्षों तक तुमने कोई क़दम नहीं उठाया—यथार्थ उपाय नहीं किया। आवश्यकता है अनशन की, बस अनशन करो।"

बेचारे असभ्य लोगों ने अनशन किया—निरन्तर अनशन किया। अनशन द्वारा बलिदान किये, परन्तु अँधकार न गया—विकराल दानव ने गुफ़ा छोड़ने का नाम तक न लिया।

फिर किसी व्यक्ति ने बताया कि ख़ैरात बाँटो—दान करो, तब यह दानव गुफा का परित्याग करेगा। उन्होंने ख़ैरात बाँटना शुरू किया, जो कुछ पास था बाँट दिया दान के रूप में, परन्तु दानव था कि किसी तौर गुफ़ा से टलने का नाम न लेता था। अन्त में वहाँ एक व्यक्ति आया। उसने कहा, "यह चला तो जायगा, किन्तु उस अवस्था में कि जब तुम लोग मेरे कहने के अनुसार काम करोगे।"

असभ्यों ने उस व्यक्ति से पूछा कि निर्देश क्या है?

व्यक्ति बोला, "कुछ छड़ियाँ लाकर दो मुझे लम्बे-लम्बे बाँसों की और कुछ सूखी घास भी इन छड़ियों के सिरों पर बाँधने के लिए तथा कुछ मछली का तेल।" फिर उसने उन लोगों से कहा, "कुछ तिनके या चीथड़े या अन्य कोई वस्तु भी जलाने के लिए संग्रह करो।"

उस व्यक्ति ने चीथड़े, घास-फूस आदि को बाँस की छड़ियों के सिरों पर बाँध लिया और मछली का तेल उन बँधे सिरों पर डाल दिया। इसके पश्चात् उसने चुम्बक पत्थर के ऊपर एक अन्य पत्थर के टुकड़े का प्रहार करके चिनगारियाँ पैदा कीं और उनसे बाँस की छड़ियों के सिरों से बँधे घास-फूस या चीथड़ों को आग लगा दी।

इस प्रकार आग पैदा कर ली गयी और यह दृश्य उन असभ्य लोगों के लिए बहुत ही अनोखा था, क्योंकि यह पहला अवसर था कि उन्होंने आग देखी थी। इसके बाद उस व्यक्ति ने उन लोगों से कहा कि उन बाँस की छड़ियों को, जिनके सिरे जल रहे थे। अपने हाथों में उठा लें और गुफ़ा के भीतर भाग कर जायें तथा इन मशालों के द्वारा दानव को कानों से पकड़कर गुफ़ा के बाहर घसीट लायें। यदि वह अंधकार-दानव उन्हें मिल जाय तो उसे छोड़ें नहीं।

असभ्य लोगों ने पहले तो उस व्यक्ति के इस सुझाव या विचार में विश्वास न किया और कहा, "यह बात या तरीक़ा ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि उनके पितामहों ने बताया था कि गुफ़ा का दानव उसी समय जायगा, जब हम उसके आगे दण्डवत् प्रणाम करेंगे या हम अनशन अर्थात् उपवास करेंगे या ख़ैरात बाँटेंगे, और ये सब उपाय हम कर चुके हैं, कई वर्षों से करते चले आ रहे हैं, लेकिन दानव ने आज तक गुफ़ा को छोड़ा नहीं।"

"और अब," उन्होंने कहा, "यह व्यक्ति अजनबी है, अपरिचित है। निश्चित ही यह कोई ठीक सलाह नहीं दे सकता—ठीक उपाय नहीं बता सकता इसकी सलाह व्यर्थ है। हमें इसकी बात को नहीं सुनना चाहिये।"

उन्होंने आग बुझा दी। परन्तु उनमें से कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जिनके

मन में पक्षपात या विरोध नहीं था। उन्होंने कुछ जलती हुई छड़ियाँ, या मशालें हाथों में उठा लीं और गुफ़ा के भीतर घुस गये। उन्होंने देखा, वहाँ कोई दानव नहीं था। वे गुफ़ा के भीतर और आगे बढ़े और आगे दूर तक चले गये—क्योंकि यह गुफ़ा बहुत लम्बी थी—परन्तु उन्हें कहीं भी दानव दिखाई न दिया। तब उन्होंने सोचा कि दानव कहीं छिपा बैठा होगा गुफ़ा के गढ़ों में—छिद्रों में। उन्होंने आलोक छड़ियों को छेद्रों-छिद्रों में घुसेड़-घुसेड़ कर देखा, परन्तु दानव-वानव कहीं न था। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह कभी यहाँ था ही नहीं।

ठीक इसी प्रकार अविद्या—अन्धविश्वास—अज्ञान—दानव है—अन्धकार है, जो हमारे हृदयों की गुफ़ा में घुसा हुआ है और हंगामा उठा रहा है, विपत्तियाँ पैदा करके हमारे जीवन को नरक बना रहा है। समस्त दुःख, कष्ट और दर्द इसी के मारे हमारे अन्दर बसे हुए हैं, वे कहीं बाहर से नहीं आते।

० अन्धविश्वास, अज्ञान या अन्धकार केवल ज्ञान द्वारा ही या आत्म-ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है, खाली तपस्या, उपवास, अनशन आदि से नहीं।

व्यक्ति बोला, "कुछ छड़ियाँ लाकर दो मुझे लम्बे-लम्बे बाँसों की और कुछ सूखी घास भी इन छड़ियों के सिरों पर बाँधने के लिए तथा कुछ मछली का तेल।" फिर उसने उन लोगों से कहा, "कुछ तिनके या चीथड़े या अन्य कोई वस्तु भी जलाने के लिए संग्रह करो।"

उस व्यक्ति ने चीथड़े, घास-फूस आदि को बाँस की छड़ियों के सिरों पर बाँध लिया और मछली का तेल उन बँधे सिरों पर डाल दिया। इसके पश्चात् उसने चुम्बक पत्थर के ऊपर एक अन्य पत्थर के टुकड़े का प्रहार करके चिनगारियाँ पैदा की और उनसे बाँस की छड़ियों के सिरों से बँधे घास-फूस या चीथड़ों को आग लगा दी।

इस प्रकार आग पैदा कर ली गयी और यह दृश्य उन असभ्य लोगों के लिए बहुत ही अनोखा था, क्योंकि यह पहला अवसर था कि उन्होंने आग देखी थी। इसके बाद उस व्यक्ति ने उन लोगों से कहा कि उन बाँस की छड़ियों को, जिनके सिरे जल रहे थे। अपने हाथों में उठा लें और गुफ़ा के भीतर भाग कर जायें तथा इन मशालों के द्वारा दानव को कानों से पकड़कर गुफ़ा के बाहर घसीट लायें। यदि वह अंधकार-दानव उन्हें मिल जाय तो उसे छोड़ें नहीं।

असभ्य लोगों ने पहले तो उस व्यक्ति के इस सुझाव या विचार में विश्वास न किया और कहा, "यह बात या तरीक़ा ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि उनके पितामहों ने बताया था कि गुफ़ा का दानव उसी समय जायगा, जब हम उसके आगे दण्डवत् प्रणाम करेंगे या हम अनशन अर्थात् उपवास करेंगे या ख़ैरात बाँटेंगे, और ये सब उपाय हम कर चुके हैं, कई वर्षों से करते चले आ रहे हैं, लेकिन दानव ने आज तक गुफ़ा को छोड़ा नहीं।"

"और अब," उन्होंने कहा, "यह व्यक्ति अजनबी है, अपरिचित है। निश्चित ही यह कोई ठीक सलाह नहीं दे सकता—ठीक उपाय नहीं बता सकता इसकी सलाह व्यर्थ है। हमें इसकी बात को नहीं सुनना चाहिये।"

उन्होंने आग बुझा दी। परन्तु उनमें से कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जिनके

मन में पक्षपात या विरोध नहीं था। उन्होंने कुछ जलती हुई छड़ियाँ, या मशालें हाथों में उठा लीं और गुफ़ा के भीतर घुस गये। उन्होंने देखा, वहाँ कोई दानव नहीं था। वे गुफ़ा के भीतर और आगे बढ़े और आगे दूर तक चले गये—क्योंकि यह गुफ़ा बहुत लम्बी थी—परन्तु उन्हें कहीं भी दानव दिखाई न दिया। तब उन्होंने सोचा कि दानव कहीं छिपा बैठा होगा गुफ़ा के गढ़ों में—छिद्रों में। उन्होंने आलोक छड़ियों को छेद्रों-छिद्रों में घुसेड़-घुसेड़ कर देखा, परन्तु दानव-वानव कहीं न था। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह कभी यहाँ था ही नहीं।

ठीक इसी प्रकार अविद्या—अन्धविश्वास—अज्ञान—दानव है—अन्धकार है, जो हमारे हृदयों की गुफ़ा में घुसा हुआ है और हंगामा उठा रहा है, विपत्तियाँ पैदा करके हमारे जीवन को नरक बना रहा है। समस्त दुःख, कष्ट और दर्द इसी के मारे हमारे अन्दर बसे हुए हैं, वे कहीं बाहर से नहीं आते।

० अन्धविश्वास, अज्ञान या अन्धकार केवल ज्ञान द्वारा ही या आत्म-ज्ञान द्वारा ही दूर किया जा सकता है, खाली तपस्या, उपवास, अनशन आदि से नहीं।

सबसे ग़रीब व्यक्ति

एक साधु के पास पीतल के कुछ टुकड़े थे। उन टुकड़ों को वे कुछ बच्चों में बाँट देना चाहते थे। बहुत-से ग़रीब लोग पीतल के ये टुकड़े पाने के लिए साधु महाशय के पास आये, परन्तु साधु ने वे टुकड़े ग़रीबों को न दिये। अन्त में महात्मा ने सामने से राजा को हाथी पर सवार आते देखा। साधु ने पीतल के उन टुकड़ों को उछालकर हाथी के हौदे में फेंक दिया, जहाँ राजा बैठा हुआ था। साधु के इस अनोखे एवं असंभावित आचरण को देखकर राजा बहुत विस्मित हुआ। साधु ने राजा को सम्बोधित करते हुए कहा, "राजन्! यह धन तुम्हारे केवल तुम्हारे ही लिए है, क्योंकि तुम्हीं सबसे अधिक गरीब व्यक्ति हो।"

राजा ने महात्मा से पूछा, "भला मैं क्यों सबसे ग़रीब हो सकता हूँ?"

साधु ने उत्तर दिया, "राजन्! तुम्हीं सबसे ग़रीब व्यक्ति हो, क्योंकि तुम्हारे पास सबसे अधिक सम्पत्ति और ऐश्वर्य है फिर भी और अधिक धन, ऐश्वर्य और राज्य प्राप्त करने की भूख तथा प्यास तुम्हें लगी रहती है। इसलिए तुम्ही सबसे अधिक ग़रीब व्यक्ति हो।

• वास्तविक ग़रीबी या दरिद्रता धन का अभाव नहीं, प्रत्युत संतोष का अभाव है अर्थात् यह लालच—यह इच्छा ही है, जिसकी पूर्ति कभी हो सकती नहीं। इसलिए लालची और असंतोषी व्यक्ति ही सबसे ग़रीब होता है।

चापलूसी का चंगुल

बंजमिन फ्रैंकलिन अपनी आत्म-कथा में अपने लड़कपन के एक अनुभव का वर्णन करते हैं। जब वे लड़कपन की मंजिलें तय कर रहे थे, वे फिलेडल्फिया के एक स्कूल में पढ़ने जाया करते थे। एक दिन स्कूल जाते समय रास्ते में उन्होंने एक लोहार को अपने कार्य में व्यस्त देखा। उन दिनों मशीनों की अभी इतनी उन्नति का दौर आरंभ नहीं हुआ था, जो आज है। लोहार अपनी दुकान में काम कर रहा था।

एक अद्भुत जिज्ञासु की भाँति बंजमिन लोहार की दुकान के सामने रुके और लोहार को काम करते हुए बड़े ध्यान से देखने लग गये। बच्चों का स्वभाव ऐसा है कि यदि उनके मन में कोई विचार आ जाय, तो वे उसमें एकदम खो जाते हैं। बंजमिन के हाथ में पुस्तकों से भरा बस्ता था और वे स्कूल जा रहे थे; परन्तु लोहार के काम करते हुए दृश्य का आनन्द उठाने के चाव में वे स्कूल के विषय में सब कुछ भूल गये।

लोहार अपने हथियारों और चाकुओं को तेज कर रहा था। लोहार का नौकर कहीं गया हुआ था और दुकान से अनुपस्थित था। लोहार ने जब देखा कि एक छोटा-सा लड़का बड़े मनोयोग से उसका काम देख रहा है, तो उसने बंजमिन से कहा कि वह उसके पास आ जाय। बंजमिन दुकान में चले गये। लोहार बोला, "कितना अच्छा लड़का है यह, बहुत सुन्दर हो, तुम कितने समझदार हो!" बंजमिन अपनी प्रशंसा व चापलूसी सुनकर फूले न समाये।

लोहार ने जब इस लड़के के मुखमण्डल पर मुस्कराहट की झलकियाँ

देखी, तो उसने इसे कहा, "क्या तुम सान चलाने में मेरी सहायता करने का कष्ट उठाओगे ?'

बंजमिन तुरन्त उस काम में लोहार की सहायता करने लग गया। (बच्चे स्वभावतः ही बड़े चुस्त, क्रियाशील होते हैं। वे कुछ न कुछ काम करना चाहते हैं। वे अपने शरीर के अंगों को निठल्ला नहीं रहने देते। यदि उनके स्वभाव को आप अच्छी तरह समझ सकते हैं और प्रेरित करने का गुण रखते हैं, तो आप उन्हें संसार के दूसरे किनारे तक भेज सकते हैं।)

जब बंजमिन फ्रैंकिलन सान पर काम कर रहे थे, उस समय लगातार लोहार उसकी चापलूसी और खुशामद करता रहा और यह लड़का काम करता चला गया। इस अवधि में लोहार ने बहुत-से चाकुओं और कुल्हाड़ों की धारें तेज कर डालीं। इतने में इस छोटे-से लड़के को थकावट महसूस होने लगी और इसे अपने स्कूल के समय तथा आधी छुट्टी की याद आ गयी और उसने दुकान से जाना चाहा। परन्तु इधर लोहार था कि इस लड़के को सुभाने, दिल्लगी तथा चापलूसी की बातें करता रहा, "वाह ! कितना अच्छा लड़का है। मैं जानता हूँ कि तुम्हें स्कूल में कोई सजा नहीं देता क्योंकि तुम इतने प्यारे और चुस्त लड़के हो। दूसरे लड़के जो काम तीन घण्टों में पूरा करते हैं, तुम एक ही घंटे में करके रख देते हो। तुम इतने अच्छे और योग्य लड़के हो कि स्कूल-मास्टर तुमसे कभी नाराज नहीं होते।"

एक-एक करके उसने तलवारों की धारें भी तेज कर डालीं। जब आधा काम हो चुका, तो इसने जाना चाहा, पर जा न सका। दस बजे पढ़कर सुनाने का समय हो गया था और इसे 12 बजे छोड़ा गया।

बंजमिन स्कूल पहुँचे, तो उन्हें देर से पहुँचने के कारण कोड़े लगाये गये। वे थक चुके थे और उनकी भुजाएँ दुख रही थीं। उन्हें एक सप्ताह तक यह परिणाम भुगतना पड़ा। वे अपने पाठ तैयार न कर सके।

इसके पश्चात् जब कभी कोई व्यक्ति उनकी चापलूसी और चिरौरी

करता, उसी समय उनके मन में यह विचार उभर आता, "उन्हें एक कुल्हाड़े की धार को तेज करना पड़ेगा।" इस घटना के बाद बेंजमिन फ्रैंक्लिन कभी चापलूसी या खुशामद के जाल में न फँसे।

० सावधान, चापलूसी व चिरौरी के चंगुल में मत फँसिये, अन्यथा आपको दुःख की चक्की में पिसना होगा।

देखी, तो उसने इसे
का कष्ट उठाओगे ?
बेंजमिन तुरन्त
(बच्चे स्वभावतः ही
करना चाहते हैं। वे
यदि उनके स्वभाव
का गुण रखते हैं, तो
हैं।)
जब बेंजमिन् फ्रै
तार लोहार उसकी
काम करता चला
कुल्हाड़ों की धारें तेज
महसूस होने लगी और
आ गयी और उसने
इस लड़के को सुनाने,
"वाह ! कितना अच्छा
सजा नहीं देता क्योंकि
जो काम तीन घण्टों में
हो। तुम इतने अच्छे और
नाराज नहीं होते।"
एक-एक करके उसने
आधा काम हो चुका, तो इसने
पढ़कर सुनाने का समय हो गया
बेंजमिन स्कूल पहुँचे, तो
गये। वे थक चुके थे और उनकी
तक यह परिणाम भुगतना पड़ा। वे
इसके पश्चात् जब कभी कोई

था। उसने बच्चे के इस डर को दूर करने का उपाय सोचा। बच्चे में कायरता पैदा करने वाले इस भ्रम-रोग का इलाज ढूंढ निकाला। पिता ने नौकर को पास बुलाया और उसके कान में कुछ कहा। नौकर उस कमरे से जहाँ पिता बैठा था, चला गया और चोर दरवाजे से निकलकर उसी साथ वाले कमरे में गया, जहाँ बच्चे के विश्वास या वहम के अनुसार एक महा-भूत रहता था। नौकर ने एक तकिया लिया, जरा बड़ा-सा तकिया और उसके एक कोने के ऊपर काला कपड़ा चढ़ा दिया। फिर उस तकिया का एक कोना खींचकर बड़ा-सा बना दिया। और उसे कमरे की खिड़की के सूराख में से जरा बाहर खींच कर इस प्रकार कस दिया, जिससे वह डरावना दिखायी देने लगा। अब बच्चे का ध्यान उसकी तरफ खींचा। बच्चे ने उसे देखा और बच्चे को वह एक अजीब डरावनी चीज प्रतीत हुई।

पिता ने तकिये के एक कोने की ओर, जो खिड़की के सुराख में से बाहर दिखा हुआ था, संकेत करके बच्चे से कहा, "देखो, यह एक कान दिखायी देता है।"

बच्चे की कल्पनाशक्ति, जो बड़ी तेज और सक्रिय थी, उसकी सहायता से बच्चे ने समझा कि यह एक कान है उस दानव-भूत का जो इस कमरे में रहता है, और वह चिल्लाकर बोला, "पिताजी! पिताजी!! यह कान है कान, उस भयंकर भूत का। मैंने कहा था ना कि इस कमरे में दानव-भूत रहता है। अब हम देखते हैं कि मेरा कहना बिलकुल ठीक था।"

पिता ने कहा, "बेटे राजा, तुम ठीक कहते हो, परन्तु तुम दिलेर और बहादुर बनो। यह लो, इस छड़ी को हाथ में पकड़ लो और हम इस भूत-दानव को जान से मार डालेंगे।"

आप जानते हैं कि लड़के बहुत बहादुरी दिखाते हैं और जोश में बड़े से बड़ा खतरा मोल ले सकते है एवं बहुत साहस रखते हैं। अतः लड़के ने पिता का सुन्दर बेंत लेकर कस कर भूत के कान पर चोट लगायी। एक

बच्चा और भूत

एक थी माँ—

कोई बहुत अच्छी समझदार माँ न थी, क्योंकि उसने अपने बच्चे के मन मे इस बात का विश्वास जमा दिया था कि दीवानखाने के साथ वाले कमरे में एक भूत का डेरा है—भूत जो बहुत भीषण दानव-सा डरावनी शक्ल वाला भूत है ! इससे बच्चे के अन्दर इतना डर पैदा हो गया था कि उस कमरे के भीतर पाँव रखने का स्वप्न भी नहीं देख सकता था ।

एक दिन, सायं के समय उस बच्चे का बाप अपने कार्यालय से घर लौटा और उसने इस लड़के से उसी साथ वाले कमरे में जाकर कोई वस्तु लाने को कहा । वह चीज बाप को उसी समय चाहिए थी । लड़का पहले ही से डरा हुआ था । उसको उस अँधेरे कमरे में जाने का साहस न पड़ा । वह भागकर पिता के पास आया और बोला, "पिताजी ! पिताजी !! मैं उस कमरे में नही जाऊँगा, नही जाऊँगा । उस कमरे में एक भयानक भूत रहता है । बहुत ही खतरनाक, विकराल भूत है वह, पिताजी ! मुझे उससे बहुत डर लगता है ।"

पिता को यह बात अच्छी न लगी । उसने कहा, "नहीं, बेटा ! नहीं ! वहाँ कोई भूत नहीं रहता, कोई विकराल दानव नही रहता । उस कमरे में तुम्हें डराने या हानि पहुँचाने वाला कोई नहीं रहता । इसलिए अच्छे बेटे ! जाओ और मैंने जो चीज कही है, उठा लाओ ।"

पिता के इस आश्वासन का बेटे पर कुछ भी प्रभाव न हुआ । वह वहीं खड़े का खड़ा रह गया, टस से मस न हुआ । पिता बहुत समझदार व्यक्ति

था। उसने बच्चे के इस डर को दूर करने का उपाय सोचा। बच्चे में कायरता पैदा करने वाले इस भ्रम-रोग का इलाज ढूँढ़ निकाला। पिता ने नौकर को पास बुलाया और उसके कान में कुछ कहा। नौकर उस कमरे से जहाँ पिता बैठा था, चला गया और चोर दरवाजे से निकलकर उसी साथ वाले कमरे में गया, जहाँ बच्चे के विश्वास या वहम के अनुसार एक महा-भूत रहता था। नौकर ने एक तकिया लिया, जरा बड़ा-सा तकिया और उसके एक कोने के ऊपर काला कपड़ा चढ़ा दिया। फिर उस तकिया का एक कोना खींचकर बड़ा-सा बना दिया। और उसे कमरे की खिड़की के सूराख में से जरा बाहर खींच कर इस प्रकार कस दिया, जिससे वह डरावना दिखायी देने लगा। अब बच्चे का ध्यान उसकी तरफ खींचा। बच्चे ने उसे देखा और बच्चे को वह एक अजीब डरावनी चीज प्रतीत हुई।

पिता ने तकिये के एक कोने की ओर, जो खिड़की के सुराख में से बाहर खिंचा हुआ था, संकेत करके बच्चे से कहा, "देखो, यह एक कान दिखायी देता है।"

बच्चे की कल्पनाशक्ति, जो बड़ी तेज और सक्रिय थी, उसकी सहायता से बच्चे ने समझा कि यह एक कान है उस दानव-भूत का जो इस कमरे में रहता है, और वह चिल्लाकर बोला, "पिताजी! पिताजी!! यह कान है कान, उस भयंकर भूत का। मैंने कहा था ना कि इस कमरे में दानव-भूत रहता है। अब हम देखते हैं कि मेरा कहना बिलकुल ठीक था।"

पिता ने कहा, "बेटे राजा, तुम ठीक कहते हो, परन्तु तुम दिलेर और बहादुर बनो। यह लो, इस छड़ी को हाथ में पकड़ लो और हम इस भूत-दानव को जान से मार डालेंगे।"

आप जानते हैं कि लड़के बहुत बहादुरी दिखाते हैं और जोश में बड़े से बड़ा खतरा मोल ले सकते है एवं बहुत साहस रखते हैं। अतः लड़के ने पिता का सुन्दर बेंत लेकर कस कर भूत के कान पर चोट लगायी। एक

आवाज उठी और एक हल्की-सी चीख सुनाई दी। उस समय नौकर ने जो उस अँधेरे कमरे में छिपकर बैठा हुआ था, तथा कथित भयंकर भूत का वह बाहर निकला हुआ कान कमरे के भीतर खींच लिया। इससे लड़का बहुत खुश हुआ और बड़े साहस के साथ बोला, "मैंने दानव-भूत पर विजय प्राप्त कर ली है।" पिता ने उसकी पीठ थपथपाकर शाबाशी दी। उसके साहस और बहादुरी के पुल बाँध कर उसे गौरव की भावना से फुला दिया और कहा, "आहा, मेरे अच्छे बेटे! तुम बहुत दिलेर हो, अद्भुत बहादुर हो।"

परन्तु पिता जब बच्चे से उसकी बहादुरी की बातें कर रहा था, उस समय भूत के दो कान उस कमरे के दरवाजे के जरा से खुले पल्लों के बीच में दिखायी दिये। लड़के को और भी जोश दिलाया गया। वह भूत की ओर दौड़ा और उसके सिर पर छड़ी के प्रहार के बाद प्रहार करने शुरू कर दिये और कमरे के भीतर से चीखें सुनायी देने लगीं। (परन्तु वास्तव में भीतर बैठा नौकर चीख की-सी आवाजें निकाल रहा था।) पिता ने बेटे को और जोश दिलाया, "बेटा, और मारो—और मारो ज़ोर से। देखा ना भूत दर्द के मारे चिल्ला रहा है। इसे मारते चले जाओ, जब तक कि इसका चीख़ना बन्द नहीं होता।"

लड़का मारता चला गया। अन्त में चीखें हल्की पड़ गयीं और पिता ने खुशी से उछल कर कहा, "तुमने भयानक भूत पर विजय प्राप्त कर ली। मेरे बहादुर बेटे, तुमने विजय प्राप्त कर ली।"

लड़के की छड़ी ताबरतोड़ चल रही थी उस तथाकथित दानव-भूत के सिर पर।

"शाबाश वीर बेटे, तुम जीत गये," पिता ने यह कह कर तकिये को बाहर खींच लिया।

पिता ने फिर ऊँचे स्वर में कहा, "मेरे बहादुर बेटे! तुमने दानव-भूत को मार-मारकर उसे तकिया बना डाला है—तकिये में बदल डाला है। कमाल कर दिया बेटे तुमने!"

बच्चा गौरव से फूला बहुत प्रसन्न और संतुष्ट हो गया और यह सत्य है कि वह दानव—वह भूत—वह भयानक भ्रम दूर हो गया। भूत सदा-सर्वदा के लिए मर गया और लड़का दिलेर हो गया। वह उछलने-कूदने और नाचने लगा। कोई ठिकाना न रहा उसके हर्ष का। वह गाता, हुआ आगे बढ़ा और उस कमरे में चला गया तथा वह चीज उठा लाया, जो उसके पिता ने कही थी।

०·मिथ्या विश्वास, वहम या भ्रम-मूलक विचार या कल्पना को दूर करने का एक ही उपाय है कि एक अन्य विचार—एक दूसरी कल्पना को मन में बिठाया जाय; जो सत्य की ओर ले जाती है, उसी विचार या कल्पना का अभ्यास किया जाय! कथित कहानी में यही विचार लड़के में बिठाया गया कि वास्तव में कोई भूत नहीं था उस कमरे में। वह भूत लड़के की अपनी कल्पना के द्वारा ही कमरे में आया था और यह कल्पना उसकी झूठी थी, यही विश्वास बच्चे के मन में पैदा किया गया।

यह सुनते ही सनकी व्यक्ति भी फूट-फूटकर रोने-चिल्लाने लग गया। वह भी अपनी बीवी के वैधव्य-शोक से बेहाल हो उठा। अन्त में दूसरे लोग भी आ पहुँचे और बोले, "क्यों रोते हो भाई?"

सनकी व्यक्ति ने उत्तर दिया, "हाय! मैं इसलिए रोता हूँ कि मेरी बीवी विधवा हो गयी है।"

"यह कैसे हो सकता है?" लोगों ने उससे पूछा। "तुम कहते हो कि तुम्हारी बीवी विधवा हो गयी है। तुम मर तो गये नहीं, फिर तुम्हारी बीवी विधवा कैसे हो गयी जब तक तुम—उसके पति—मर नहीं जाते? तुम मरे नहीं हो और अपनी बीवी के रण्डापे का शोक मना रहे हो। यह दो विरोधी बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं?"

सनकी व्यक्ति ने गंभीर स्वर में कहा—

"तुम तो कहते हो सच मेरे भाई।
पर घर से आया है मुअतबर नाई।"

"अरे चले जाओ भाई, दूर हटो—तुम नहीं जानते, तुम नहीं समझते, मेरे अत्यन्त विश्वस्त मित्र ने मुझे बताया है। वह अभी-अभी मेरे घर से आया है और उसी ने बताया है कि मेरी बीवी विधवा है। वह प्रत्यक्ष साक्षी है इस सत्य का। उसने मेरी बीवी को विधवा हुए देखा है।"

लोगों ने कहा, "देखो भाई! यह कितनी मूर्खता है—कितनी बेहूदगी है!!"

यह मूर्खता—यह बेहूदगी—संसार के समस्त सम्प्रदायों और धर्म-मतों तथा संसार के सभी झूठे, घमण्डी और फैशनेबल लोगों में फैली हुई है। वे अपनी आँखों से नहीं देखते, वे अपने दिमाग़ों से नहीं सोचते। तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा सच्चा अपना आप, प्रकाशों का प्रकाश, शुद्ध, निर्विकल्प, निर्विकार, स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे अपने भीतर मौजूद है। तुम्हारा अपना सच्चा अपना आप, तुम्हारी अपनी आत्मा अजर और अमर है, सब जगह मौजूद, सर्वव्यापी है, आनन्दस्वरूप है, कभी मरता नहीं, फिर भी तुम हो कि रोते हो, आँसू बहाते हो और कहते हो, "हाय! खुशी

भयंकर मूर्खता!

भारत में एक व्यक्ति रहता था—

वह आधा सनकी तो अवश्य ही था। जिस प्रकार अमरीका तथा यूरोप के कई देशों में "अप्रैल फ़ूल" बनाया जाता है, उसी प्रकार मार्च[1] के महीने में भारत के लोग अपने दोस्तों से कई तरह की हँसी-ठठोली और आमोद-प्रमोद-क्रीड़ा किया करते हैं।

जिस गाँव में उक्त सनकी व्यक्ति रहता था, वहाँ के कुछ आमोद-प्रमोद-प्रेमी लोगों ने उस सनकी की हँसी उड़ाने—उसे बेवकूफ़ (भड़ुवा) बनाने की योजना बनायी। उन लोगों ने सनकी महोदय को शराब पिलायी और उसे नशे में धुत कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने उस सनकी के अत्यन्त विश्वस्त घनिष्ठ मित्र को उसके पास भेजा। यह विश्वस्त मित्र जब अपने सनकी मित्र के पास पहुँचा, तो दाएँ मार कर रोने लगा। उसने अपनी छाती भी पीटी और आँखों से मगरमच्छ के आँसुओं की झड़ी भी लगा दी। रुँधे गले से फुफक-फुफककर बोला, "हाय मेरे दोस्त! मैं अभी-अभी तुम्हारे घर से आ रहा हूँ। मैंने वहाँ देखा, तुम्हारी बीवी विधवा हो गयी है—रण्डवी हो गयी, हाय दोस्त! तुम्हारी प्यारी बीवी!!"

---

1. मार्च के महीने में होली का त्योहार मनाया जाता है। आप सब जानते ही हैं कि लोग किस प्रकार एक-दूसरे को "होली का भड़ुवा" बनाया करते हैं।

कब मिलेगी, कब सुख आयगा मेरे पास।" और देवताओं का आह्वान करते हो कि तुम्हें दुखों से छुड़ाएँ। इस प्रकार तुम अपने आपको गिरा देते हो, हीनभावना को पाल लेते हो! यह इसलिए है कि ऐसे ही लेखक ऐसा ही एक साधु-महात्मा अपने आपको पापी कहता है, क्योंकि वह आपको कीड़े कहता, हीन प्राणी कहता है, इसलिए तुम्हें अपने आपको वैसा ही करना चाहिये, तुम्हारी मुक्ति तुम्हें अपने आपको मुर्दा समझने में निहित है। यह है तरीक़ा जिससे लोग सोचते हैं। परन्तु इससे काम चलता नहीं।

० यद्यपि मनुष्य समस्त सुखों और सच्चे आनन्द का स्वयं ही स्रोत है—स्वयं ही सर्वशक्ति, सर्वविभूति से सम्पन्न है, फिर भी सुख और खुशी के लिए रोता और चिल्लाता है और अपने आपको पापी, दीन, हीन, दुःखी समझता है, क्योंकि अन्य लोग उसे ऐसा ही कहते हैं।—आह! यह कितनी भयानक मूर्खता है!! कितनी खतरनाक बेहूदगी है!!

नामों की निकाब

तीन लड़को को उनके मास्टर ने चार आने (25 पैसे) दिये और कहा कि वे आपस में बराबर बाँट लें। उन लड़कों ने निश्चय किया कि इन पैसों से कोई चीज खरीद ली जाय। उन लड़कों में एक लड़का था अंग्रेज, एक हिन्दू था और तीसरा था ईरानी। उनमें से कोई भी लड़का एक-दूसरे की भाषा को अच्छी तरह से नहीं समझ सकता था। इसलिए उन्हें व्यवहार में कुछ कठिनाई पेश आती थी। वे क्या चीज खरीदें यह फैसला करना भी उन्हें मुश्किल हो रहा था। अंग्रेज लड़के ने अनुरोध किया कि 'वाटर-मेलन' (Water melon) खरीदा जाय। हिन्दू लड़के ने कहा, "नही, नही, मैं तो 'हिन्दवाना' लेना चाहूँगा।" तीसरा ईरानी लड़का दृढ़ शब्दों में बोला, "नहीं भई, नहीं, हमें 'तरबूज' ही खरीदना चाहिये।"

इस प्रकार वे तीनों फैसला न कर सके कि क्या खरीदा जाय। प्रत्य लड़का अपनी-अपनी ही पसन्द की चीज खरीदने पर डटा हुआ था। वे एक-दूसरे की पसन्द को स्वीकारना नहीं चाहते थे। एक अजीब समस्या—एक निराली-सी उलझन उनके मध्य आ पड़ी थी। वे बाजार में से गुजर रहे थे और आपस में लड़-झगड़ रहे थे।

संयोगवश एक ऐसा व्यक्ति उधर आ निकला, जो तीनों भाषाएँ—अंग्रेजी, हिन्दुस्तानी और ईरानी—समझ सकता था। वह व्यक्ति उनमें यह झगड़ा देख कर मजे लेने लगा। अन्त में उसने उन लड़कों से कहा कि वह उनके झगड़े का निबटारा करा सकता है। तीनों लड़कों ने यह

मुआमला उस व्यक्ति को सौंप दिया और यह बात मान ली गई कि वह व्यक्ति जो निर्णय करेगा वह तीनों को स्वीकार करना ही पड़ेगा।

उस व्यक्ति ने तीनों लड़कों से वे पच्चीस पैसे ले लिए और उनसे कहा कि वे इस नुक्कड़ पर उसकी प्रतीक्षा करें। वह व्यक्ति स्वयं फलों की एक दुकान पर गया और हिन्दवाने का एक बड़ा-सा नग खरीद लाया। उसने हिन्दवाने को अपने पास छिपा कर रख लिया। उसने लड़कों को बारी-बारी से अपने पास बुलाया। उसने पहले अंग्रेज लड़के को बुलाया और उसे यह पता न लगने दिया कि वह स्वयं क्या कर रहा है। उस व्यक्ति ने हिन्दवाने को तीन बराबर टुकड़ों में काट कर रख लिया और एक टुकड़ा बाहर निकाल कर अंग्रेज लड़के के हाथ में दे दिया और पूछा—"क्या यही वह चीज है ना, जो तुम चाहते थे?"

अंग्रेज लड़का हिन्दवाने का यह टुकड़ा लेकर बहुत ही खुश हुआ और उस व्यक्ति का धन्यवाद किया।

इसके बाद उस व्यक्ति ने ईरानी लड़के को अपने पास बुलाया। ईरानी आया तो उस व्यक्ति ने दूसरा टुकड़ा ईरानी लड़के को थमा दिया और पूछा, "क्यों भई! यही चीज तुम खरीदना चाहते थे ना?"

ईरानी लड़के की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने धन्यवाद करते हुए कहा, "यही है मेरा तरबूज। यही है वह चीज जो मैं चाहता था। वह बगलें बजाता हुआ चला गया। इसके पश्चात् हिन्दू लड़के को पास बुलाया उस व्यक्ति ने। उसने हिन्दू लड़के को हिन्दवाने का तीसरा टुकड़ा दे दिया और उससे पूछा, 'ऐ, लड़के, क्या यही चीज तुम चाहते थे?"

हिन्दू लड़का खिलखिला कर बोला, "वाह वा, यही है वह चीज जो मैं चाहता था।" और झूमता-मटकता चला गया।

अब सोचिये, उन लड़कों के मध्य झगड़ा या संघर्ष क्यों पैदा हो गया था? वह क्या चीज थी, जिसने उन तीनों लड़कों में ग़लतफ़हमी और भ्रम पैदा कर दिया था? केवल नाम। केवल नाम ही थे झगड़े का मूल;

अन्य कोई चीज न थी। नाम को ज़रा अलग कर दीजिये—नाम को दिमाग़ से उठा कर परे फेंक दीजिये और नामों की निक़ाब के पीछे क्या है, उसे देखिये। उपर्युक्त झगड़े को लीजिये। उसमें तीन विभिन्न नाम थे—वाटर-मेलन, तरबूज और हिन्दवाना—जो एक ही चीज के लिए प्रयुक्त होते हैं। इन विभिन्न नामों के पर्दे में चीज एक ही थी और है। यह बात अलग है कि ईरानी तरबूज, जो ईरान की धरती में पैदा होता है और जिसे अंग्रेज़ी में 'वाटर मेलन' कहा जाता है, उस तरबूज या वाटर-मेलन से थोड़ा-सा फ़र्क रख सकता है और इसी प्रकार हिन्दवाना, जो भारत की धरती से पैदा होता है, ईरानी तरबूज या अंग्रेज़ी वाटर-मेलन से ज़रा-सा अन्तरमय हो सकता है, परन्तु वास्तव में यह फल एक ही है। यह तीन नामों वाला फल एक और सर्वथा समान जाति का फल है। आकार-रूप में सामान्य-सा अन्तर किसी गिनती में नहीं आ सकता, उसकी उपेक्षा की जा सकती है।

इसी प्रकार के झगड़े, संघर्ष, ग़लतफ़हमियाँ और विरोध विभिन्न धर्म-मतों में पाये जाते हैं। ईसाई यहूदियों से उलझते हैं, यहूदी मुसलमानों के गले पड़ते हैं, मुसलमान ब्राह्मणों (हिन्दुओं) से हाथा-पाई करते हैं और ब्राह्मण बौद्धों को लताड़ना चाहते हैं और बौद्ध भी इसी प्रकार के प्रतिरोध में लगे हैं। धर्म-मतों के ऐसे लड़ाई-झगड़े देख कर बड़ी हँसी आती है, क्योंकि इन समस्त झगड़ों और ग़लतफ़हमियों का प्रधान कारण नाम ही है। इन नामों की निक़ाबों को हटा दीजिये—नामों के पर्दे को उठा कर अलग रख दीजिये और उनके पीछे विद्यमान चीज को देखिये, जिसके लिए ये नाम प्रयुक्त होते हैं, आपको पता चलेगा कि वह एक ही चीज है—वहाँ कोई फ़र्क या विभिन्नता नहीं है।

• परमात्मा एक ही है, उसे ख़ुदा कह लीजिये या गॉड (God) या ईश्वर। इन नामों के पीछे एक ही सत्य विद्यमान है। वही सब धर्म-मतों की एक मात्र मंजिल है—एक ही उस मंजिल या लक्ष्य तक पहुँचने के

लिए रास्ते अवश्य अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु गन्तव्य स्थान एक ही है—सभी रास्ते—सभी धर्म-मतों का एक ही लक्ष्य है—प्रभु-प्राप्ति। यह होते हुए भी विभिन्न धर्म-मतों के लोग केवल अज्ञानवश नामों की ग़लतफ़हमी के कारण ही लड़ते हैं। बस इस सत्य को समझ लीजिये फिर स्वर्ग या बहिश्त—अमन और शान्ति—सुख और आनन्द इसी धरती पर मौजूद हैं।

स्वार्थी हाथ

एक बार हाथ स्वार्थी बन गया और उसने भ्रातृ-भाव या भ्रातृ-प्रेम को उठा कर ताक पर रख दिया। एकता की भावना को तिलांजलि दे डाली और इस प्रकार सोचने लगा, "एक मैं हूं कि दिन-भर काम करता हूं और मेरे काम का सारा लाभ पेट महोदय साफ़ कर जाते हैं या शरीर के अन्य अंग उस लाभ से मौज उड़ाते हैं। मैं कोई वस्तु नहीं खाता। मैं दांतों और मुंह को अपने काम के लाभ नहीं उठाने दूंगा; उन तक कोई वस्तु खाने के लिए नहीं पहुंचाऊंगा। मैं सब चीज़ें स्वयं प्रयोग में लाऊंगा।"

इस तर्क को साकार करने के लिए हाथ ने योजना बना ली; कार्य-प्रणाली तय कर ली। खाना मेज पर आ गया। खाने की चीज़ें हाथ को स्वयं खानी चाहिये थीं। हाथ को इन सब चीजों का लाभ स्वयं उठाना था।

हाथ ने एक पिन उठाया, उससे अपने-आप में एक सूराख़ अर्थात् छिद्र बनाया और उसमें दूध डाला—दूध का टीका लगाया, ताकि मुंह को लाभ न पहुंच पाये। ऐसा करके हाथ ने अपने आपको दूध क्या पिलाया, उलटा बीमार कर लिया। वह अपने आपको लाभ न पहुंचा सका। ख़ैर, एक और भी तरीका था स्वयं लाभ उठाने का। हाथ ने अपने आपको मोटा-ताज़ा करने के लिए शहद लेना चाहा। यह शहद कहां से आयगा? शहद की मक्खी से। फिर क्या था, हाथ ने शहद की मक्खी पकड़ कर उससे अपने आप पर डंक लगवाया। हाथ को बहुत-सा शहद मिल गया, उसने अपने आप में शहद की मक्खी का जीवन डाल लिया। आप जानते हैं कि

लिए रास्ते अवश्य अलग-अलग हो सक
है—सभी रास्ते—सभी धर्म-मतों का
होते हुए भी विभिन्न धर्म-मतों के सो
फ़हमी के कारण ही लड़ते हैं। बस
या बहिश्त—अमन और शान्ति—
मौजूद हैं।

धोखा करोगे, धोखा खाओगे

भारत में एक गृह-स्वामी रहता था। बड़ा जालिम और अद्भुत चतुर और हँसोड़ा भी था। वह अपने नौकरों को बड़े हास्यात्मक ढंग से सताया करता था। एक बार नौकर ने गृहस्वामी अर्थात् अपने मालिक के लिए बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाया। मालिक नहीं चाहता था कि नौकर उस भोजन में से कुछ भी भाग प्राप्त कर सके। खाने की यह वस्तु रात को बनायी गयी थी। जब तैयार हो गयी, तो मालिक ने कहा, "हम इसे अभी नहीं खाते। अब सो जाते हैं, सवेरे उठ कर इसे खायेंगे।"

प्रातः उठकर यह भोजन खाने की योजना बनाने में मालिक की वास्तविक नीयत यह थी कि प्रातः समय उसे बहुत करारी भूख लगी होगी। रात को कुछ खायगा नहीं, फलस्वरूप सवेरे उठते ही करारी भूख लगी होने के कारण वह सारा भोजन स्वयं ही खा जाने की स्थिति में होगा। फलस्वरूप नौकर के लिए कुछ बचेगा नहीं। यह था वास्तविक इरादा उस मालिक का। वह चाहता था कि नौकर को केवल छिलकों, पापड़ या कणों से पेट भर लेना चाहिये। परन्तु अपना यह इरादा नौकर को क्यों बताने लगा था। यह बात स्पष्ट रूप में नौकर से कहने की न थी। अस्तु यह इरादा नौकर से गुप्त रख कर मालिक ने उसे कहा, "ठीक है, अब तुम आराम करो। और सवेरे उठ कर हम में से एक आदमी यह भोजन खा लेगा, जो सबसे मधुर व बढ़िया स्वप्न रात में देखेगा। यदि प्रातः समय तक तुमने सबसे सुन्दर स्वप्न देखा, तो यह सारा भोजन तुम्हीं को मिल जायगा, अन्यथा यह सारा मेरे हिस्से में आयगा और मैं इसे खा लूँगा

'मरने के बाद मक्खी मर जाती है'। इधर मक्खी मर गयी और इधर हाथ महोदय फूल कर कुप्पा हो गये। मोटा जो होना चाहते थे, अस्तु हाथ मोटा हो गया। सारा शहद मानो हाथ ने अपने आप में भर लिया था। परन्तु यह क्या! हाथ को यह मोटापा महँगा पड़ा, कुछ लाभ पहुँचने के स्थान पर उसे पीड़ा तथा कष्ट अपना ऐसा मजा चखाने लगे कि हाथ को आटे-दाल का भाव याद आ गया।

इस प्रकार काफी कष्ट उठाने के पश्चात् हाथ के होश ठिकाने लगे और उसने कहा, "मैं जो कुछ कमाता हूँ वह सब केवल मुझे ही नहीं मिलना चाहिये, या मुझे ही अपने पास नहीं रखना चाहिये, बल्कि मैं जो कुछ कमाता हूँ, वह सब पेट ही में जाना चाहिये और वहाँ वह रक्त द्वारा प्रयोग में लाया जाना चाहिये, पावों द्वारा, हाथों द्वारा और शरीर के प्रत्येक अवयव द्वारा काम में लाया जाना चाहिये और तभी, केवल तभी मुझे—मुझ हाथ को—लाभ पहुँचता है, अन्य कोई रास्ता या तरीका नहीं है। इस प्रकार हाथ को यह विश्वास करने पर मजबूर होना पड़ा कि हाथ का अपना आप या हाथ का आत्मा इस छोटे-से क्षेत्र में सीमित नहीं है।

हाथ का अपना आप उसी समय लाभ उठायेगा, जबकि सारे शरीर को लाभ पहुँचेगा। हाथ का अपना आप उसी समय लाभ उठा सकेगा, जब आँखों का अपना आप लाभान्वित होगा। हाथ का अपना आप या आत्मा वही है, जो आँखों का आत्मा या अपना आप है, जो कानों का अपना आप है, जो सारे शरीर का अपना आप अर्थात् आत्मा है।

• इसलिए यदि आप हाथ की भाँति स्वार्थी बन जाते हैं, तो आपको भी इस प्रकार के स्वार्थ के परिणामों का मजा चखना होगा, जो हाथ ने चखा था। ईश्वरीय या प्राकृतिक विधान आपको अपनी जाति—मानव-जाति—से अलग होने की आज्ञा नहीं देता। अतः ऐसे काम कीजिये, ऐसा जीवन-मार्ग ग्रहण कीजिये जिससे केवल आपके अपने आप ही को नहीं सारी मानव-जाति को लाभ पहुँचे। तभी आपको लाभ पहुँचेगा।

धोखा करोगे, धोखा खाओगे

भारत में एक गृह-स्वामी रहता था। बड़ा जालिम और अद्भुत चतुर और हँसोड़ा भी था। वह अपने नौकरों को बड़े हास्यात्मक ढंग से सताया करता था। एक बार नौकर ने गृहस्वामी अर्थात् अपने मालिक के लिए बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाया। मालिक नहीं चाहता था कि नौकर उस भोजन में से कुछ भी भाग प्राप्त कर सके। खाने की यह वस्तु रात को बनायी गयी थी। जब तैयार हो गयी, तो मालिक ने कहा, "हम इसे अभी नहीं खाते। अब सो जाते हैं, सवेरे उठ कर इसे खायेंगे।"

प्रातः उठकर यह भोजन खाने की योजना बनाने में मालिक की वास्तविक नीयत यह थी कि प्रातः समय उसे बहुत करारी भूख लगी होगी। रात को कुछ खायगा नहीं, फलस्वरूप सवेरे उठते ही करारी भूख लगी होने के कारण वह सारा भोजन स्वयं ही खा जाने की स्थिति में होगा। फलस्वरूप नौकर के लिए कुछ बचेगा नहीं। यह था वास्तविक इरादा उस मालिक का। वह चाहता था कि नौकर को केवल छिलकों, पापड़ या कणों से पेट भर लेना चाहिये। परन्तु अपना यह इरादा नौकर को क्यों बताने लगा था। यह बात स्पष्ट रूप में नौकर से कहने की न थी। अस्तु यह इरादा नौकर से गुप्त रख कर मालिक ने उसे कहा, "ठीक है, अब तुम आराम करो। और सवेरे उठ कर हम में से एक आदमी यह भोजन खा लेगा, जो सबसे मधुर व बढ़िया स्वप्न रात में देखेगा। यदि प्रातः समय तक तुमने सबसे सुन्दर स्वप्न देखा, तो यह सारा भोजन तुम्हीं को मिल जायगा, अन्यथा यह सारा मेरे हिस्से में आयगा और मैं इसे खा लूंगा

और तुम्हे बचे-खुचे पापड़ या छोटे-छोटे कणों से ही अपनी सन्तुष्टि करनी होगी ।"

सबेरा हुआ ।

मालिक और नौकर आमने-सामने बैठ गये । मालिक चाहता था कि पहले नौकर अपने स्वप्न का विवरण सुनाये । अस्तु नौकर ने कहा, "श्रीमान जी ! आप मालिक हैं, आपको पहल मिलनी चाहिये । अच्छी बात यही है कि पहले आप अपना स्वप्न सुनायें । और बाद को मैं सुना दूंगा ।"

मालिक ने अपने मन में सोचा, यह ग़रीब नौकर, अनपढ़ और मूर्ख आदमी कोई बहुत बढ़िया स्वप्न नहीं गढ़ सकता, इसलिए मालिक ने स्वयं कहना आरंभ किया, "अपने स्वप्न में मैं भारत का सम्राट् था । मैंने स्वप्न में देखा कि समस्त यूरोपीय शक्तियाँ और समग्र अमरीकन शक्तियाँ भारत के सम्राट् के शासनाधीन कर ली गयी हैं और इसलिए मैंने भारत के सम्राट् रूप में सारे संसार पर शासन किया ।"

आप जानते हैं, यह स्वप्न ज़ालिम मालिक का था । सच्चा भारतीय यह नहीं चाहता कि वह राजा को अपने सामने एक जीता-जागता देवता समझ कर उसकी पूजा करने की रीति को जारी रखा जाय । ख़ैर वह उस मालिक का स्वप्न था । वह स्वप्न मे अपने आपको भारत के राजसिंहासन पर सत्तारूढ़ पाता था और समस्त संसार का शासक समझता था और यह देखता था कि समस्त देशो के राजे उसके सामने हाथ बाँधे खड़े हैं तथा उसे नाना प्रकार के उपहार भेंट कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त उसने अपने स्वप्न में देखा कि समस्त देवता और ऋषि-मुनि-गण उसके दरबार में लाये गये हैं और वे सब उसके बाएँ हाथ की ओर बैठे हैं या दाएँ हाथ की ओर बैठे हैं ।

यह स्वप्न सुनाने के पश्चात् अब मालिक ने चाहा कि उसका नौकर अपने स्वप्न का वर्णन करे ।

नौकर बेचारा सिर से लेकर पैरों तक काँपता, थरथराता हुआ बोला,

"श्रीमान महोदय ! मैंने कोई इस प्रकार का स्वप्न नही देखा।"

मालिक की बाछें हर्ष के मारे खिल उठीं, खुशी से फूले नहीं समा रहा था और सोचने लगा, बस अब वह स्वादिष्ट खाना सारे का सारा उसी के हिस्से में आ जायगा। इधर नौकर ने अपने स्वप्न का वर्णन आरंभ करते हुए कहा, "मैंने अपने स्वप्न में एक अत्यन्त भयंकर, कुरूप, महाकाय दानव देखा। वह दानव मेरी ओर बढ़ा। उसने हाथ में बिजली की-सी चमकती हुई तलवार पकड़ी हुई थी।"

"अच्छा !" मालिक ने उत्सुकतापूर्वक पूछना आरंभ किया, "फिर क्या हुआ, इसके आगे क्या हुआ ?"

नौकर ने कहा, "श्रीमान जी, वह दानव मेरे पीछे भागा और वह मुझे तलवार के घाट उतारने ही वाला था।"

मालिक के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गयी। यह आशाजनक चिह्न था।

"उसने मुझे मार डालना आरंभ किया—वह मुझे क़त्ल कर देने का प्रयत्न कर रहा था।" नौकर ने कहा।

मालिक ने पूछा, "और तुमने फिर क्या किया ? तुम्हें क़त्ल करने में उसका उद्देश्य क्या था ?"

नौकर ने बताया, "श्रीमान जी, वह कमबख्त यह चाहता था कि या तो मैं वह स्वादिष्ट खाना खा जाऊँ या सिर कटवा लूँ।"

"तो फिर तुमने क्या किया ?" मालिक ने पूछा।

"मैंने क्या किया,' नौकर ने कहा,' 'मरता क्या न करता। मैं चुपचाप सीधा रसोईघर में चला गया और वहाँ जो कुछ पड़ा था, सब खा गया।"

मालिक ने कहा, "तो तुमने मुझे क्यों नहीं जगा दिया ?"

नौकर ने उत्तर दिया, "श्रीमान जी, आप तो सारे विश्व के सम्राट् थे। आपके दरबार में महान् भव्य समारोह था, बड़े-बड़े अधिकारी जमा थे। वहाँ आदमी तलवारें खींचे, बन्दूकें ताने एवं तोपें गाढ़े खड़े थे। यदि मैं आपके पास पहुंचने की कोशिश में आगे बढ़ता, तो वे पहरेदार मुझे

मार डालते । मैं आप न तो आप तक पहुँच सका और न ही आपको सूचित कर सका कि मैं कितनी भयानक मुसीबत में फँसा हुआ था । इसलिए मुझको वह स्वादिष्ट भोजन खाने पर मजबूर होना ही पड़ा, सरकार !"

० जो व्यक्ति लालच के मारे किसी से धोखा करने का प्रयास करता है, वह स्वयं ही उस धोखे या अन्य किसी प्रकार के जाल में फँसकर हानि उठाता है । ऐसा प्रायः होता है; क्योंकि यह प्रकृति का नियम है ।

०००